Chapter पाँच

देवताओं द्वारा भगवान् से सुरक्षा याचना

इस अध्याय में पाँचवे तथा छठे मनुओं का वर्णन है। साथ ही इसमें देवताओं की स्तुतियों एवं दुर्वासा मुनि के शाप का भी वर्णन हुआ है।

चतुर्थ मनु तामस जिसका वर्णन पहले हो चुका है, का भाई रैवत पाँचवाँ मनु था। रैवत के पुत्रों में अर्जुन, बलि तथा विन्ध्य प्रमुख थे। इस मनु के राज्यकाल में स्वर्ग का राजा इन्द्र विभु के नाम से जाना जाता था, भूतरयगण देवता थे और हिरण्यरोमा, वेदशिरा तथा ऊर्ध्वबाहु इत्यादि सप्तर्षि थे। शुभ्र नामक ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से भगवान् वैकुण्ठ ने जन्म लिया। इन भगवान् ने रमादेवी के आग्रह पर वैकुण्ठ लोक उत्पन्न किया। तृतीय स्कंध में इनकी शक्ति तथा कार्यकलापों का उल्लेख हो चुका है।

छठे मनु चाक्षुष थे, जो चक्षु मनु के पुत्र थे। इस छठे मनु के पुत्रों में पुरु, पुरुष तथा सुद्युम्न हुए। इस मनु के शासन काल में मंत्रद्रुम स्वर्ग का राजा इन्द्र था, आप्यगण देवता थे और हविष्मान तथा वीरक इत्यादि सप्तर्षि थे। वैराज की पत्नी देवसम्भूति ने अजित नामक भगवान् के अवतार को जन्म दिया। इसी अजित ने कछुवे का रूप बना कर अपनी पीठ पर मंदर पर्वत को धारण किया और समुद्र मन्थन करके देवताओं के लिए अमृत उत्पन्न किया।

महाराज परीक्षित समुद्र मंथन के विषय में सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे; अतएव शुकदेव गोस्वामी ने उन्हें बताना शुरू किया कि किस प्रकार दुर्वासा मुनि के शाप से देवतागण असुरों द्वारा युद्ध में परास्त हुए। जब देवताओं से उनका स्वर्ग का राज्य छिन गया तो वे ब्रह्मा के सभा-भवन में गये और ब्रह्माजी को सब कुछ कह सुनाया। तब ब्रह्मा सारे देवताओं को साथ लेकर क्षीर सागर के तट पर गये और उन्होंने क्षीरोदकशायी विष्णु की स्तुति करना प्रारम्भ किया।

श्रीशुक उवाच
राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; राजन्—हे राजा; उदितम्—पहले ही वर्णन किया जा चुका; एतत्—यह; ते—तुमसे; हरेः—भगवान् का; कर्म—कर्म; अघ-नाशनम्—जिसे सुनकर मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो सकता है; गजेन्द्र-

मोक्षणम्—गजेन्द्र के मोक्ष को; पुण्यम्—सुनने तथा वर्णन करने में अत्यन्त पवित्र; रैवतम्—रैवत मनु के विषय में; तु—लेकिन; अन्तरम्—इस युग में; शृणु—कृपया मुझसे सुनो।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा! मैंने तुमसे गजेन्द्रमोक्षण लीला का वर्णन किया है, जो सुनने में अत्यन्त पवित्र है। भगवान् की ऐसी लीलाओं के विषय में सुनकर मनुष्य सारे पापों के फलों से छूट सकता है। अब मैं रैवत मनु का वर्णन कर रहा हूँ, कृपया उसे सुनो।

पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ।
बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता हार्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

पञ्चमः—पाँचवाँ; रैवतः—रैवत; नाम—नामक; मनुः—मनु; तामस-सोदरः—तामस मनु का भाई; बलि—बलि; विन्ध्य—विन्ध्य; आदयः—इत्यादि; तस्य—उसके; सुताः—पुत्र; ह—निश्चय ही; अर्जुन—अर्जुन; पूर्वकाः—इनके पुत्रों में प्रधान।

तामस मनु का भाई रैवत पाँचवाँ मनु था। उसके पुत्रों में अर्जुन, बलि तथा विन्ध्य प्रमुख थे।

विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ।
हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

विभुः—विभु; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; सुर-गणाः—देवता; राजन्—हे राजा; भूतरय-आदयः—भूतरय आदि; हिरण्यरोमा—हिरण्यरोमा; वेदशिरा—वेदशिरा; ऊर्ध्वबाहु—ऊर्ध्वबाहु; आदयः—इत्यादि; द्विजाः—ब्राह्मण या सातों लोकों के ऋषि।

हे राजा! रैवत मनु के युग में स्वर्ग का राजा (इन्द्र) विभु था, देवताओं में भूतरय इत्यादि थे और सप्त लोकों के अधिपति सात ब्राह्मण हिरण्यरोमा, वेदशिरा तथा ऊर्ध्वबाहु इत्यादि थे।

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ।
तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

पत्नी—पत्नी; विकुण्ठा—विकुण्ठा नाम की; शुभ्रस्य—शुभ्र की; वैकुण्ठैः—वैकुण्ठों सहित; सुर-सत्-तमैः—देवताओं के साथ; तयोः—विकुण्ठा तथा शुभ्र से; स्व-कलया—स्वांश से; जज्ञे—प्रकट हुआ; वैकुण्ठः—भगवान्; भगवान्—भगवान्; स्वयम्—साक्षात्।

शुभ्र तथा उसकी पत्नी विकुण्ठा के संयोग से भगवान् वैकुण्ठ अपने स्वांश देवताओं सहित प्रकट हुए।

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

वैकुण्ठः—वैकुण्ठ लोक; कल्पितः—बनाया गया; येन—जिसके द्वारा; लोकः—लोक; लोक-नमस्कृतः—सभी लोकों द्वारा पूजित; रमया—रमा, धन की देवी द्वारा; प्रार्थ्यमानेन—प्रार्थना किये जाने पर; देव्या—देवी द्वारा; तत्—उसको; प्रिय-काम्यया—प्रसन्न करने के लिए।

धन की लक्ष्मी (रमा) को प्रसन्न करने के लिए भगवान् वैकुण्ठ ने उनकी प्रार्थना पर एक अन्य वैकुण्ठ लोक की रचना की जो सब के द्वारा पूजा जाता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि यह वैकुण्ठ लोक *श्रीमद्भागवत* की तरह प्रकट होता है और उत्पन्न हुआ या सृजित कहलाता है, किन्तु *श्रीमद्भागवत* तथा वैकुण्ठ दोनों ही आठ प्रकार के आवरणों से ढके भौतिक ब्रह्माण्डों से परे सदैव विद्यमान रहते हैं। जैसाकि द्वितीय स्कंध में बताया जा चुका है, ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि के पूर्व वैकुण्ठ देखा था। वीरराघव आचार्य उल्लेख करते हैं कि यह वैकुण्ठ इस ब्रह्माण्ड के भीतर है। यह लोकालोक नामक पर्वत के ऊपर स्थित है और सबके द्वारा पूजित है।

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ।
भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—वैकुण्ठ के रूप में प्रकट होने वाले भगवान् को; अनुभावः—महान् कार्यकलाप; कथितः—बताये जा चुके; गुणाः—दिव्य गुण; च—भी; परम-उदयाः—अत्यन्त यशस्वी; भौमान्—पृथ्वी के; रेणून्—कण; सः—जो कोई; विममे—गिन सकता है; यः—ऐसा पुरुष; विष्णोः—विष्णु के; वर्णयेत्—गिन सकता है; गुणान्—दिव्य गुणों को।

यद्यपि भगवान् के विविध अवतारों के महान् कार्यों तथा दिव्य गुणों का अद्भुत रीति से वर्णन किया जाता है, किन्तु कभी-कभी हम उन्हें नहीं समझ पाते। किन्तु भगवान् विष्णु के लिए सब कुछ सम्भव है। यदि कोई ब्रह्माण्ड के सारे परमाणुओं को गिन सके तो वह भगवान् के गुणों की गणना कर सकता है। किन्तु ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है। अतः कोई भी भगवान् के दिव्य गुणों को नहीं गिन सकता।

तात्पर्य : इस प्रसंग में भगवान् के जिन यशस्वी कार्यों का उल्लेख है वे जय तथा विजय नामक उनके निजी अंगरक्षकों को सनक, सनातन, सनत्कुमार तथा सनन्दन महान् ऋषियों द्वारा शाप दिये जाने के बाद दैत्य बनने पर घटित हुए। जय को हिरण्याक्ष के रूप में वराहदेव से युद्ध करना पड़ा और इन्हीं वराहदेव का वर्णन रैवत कल्प के सम्बन्ध में किया जा रहा है। किन्तु यह युद्ध प्रथम मनु स्वायंभुव के

शासनकाल में हुआ। अतएव कुछ विद्वानों के अनुसार वराह दो हुए हैं। किन्तु अन्यों का मत है कि वराह स्वायंभुव मनु के राज्यकाल में प्रकट हुए और रैवत मनु के काल तक जल के भीतर रहते रहे। कुछ लोगों को सन्देह हो सकता है कि यह कैसे घटित हुआ होगा, किन्तु उत्तर यह है कि कुछ भी घटित हो सकता है। यदि कोई ब्रह्माण्ड के परमाणुओं की गणना कर ले तो वह भगवान् विष्णु के गुणों को गिन सकता है। किन्तु न तो कोई परमाणुओं को गिन सकता है और न भगवान् के दिव्य गुणों को ही।

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ।
पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

षष्ठः—छठा; च—तथा; चक्षुषः—चक्षु का; पुत्रः—पुत्र; चाक्षुषः—चाक्षुष; नाम—नामक; वै—निस्सन्देह; मनुः—मनु; पूरु—पूरु; पूरुष—पूरुष; सुद्युम्न—सुद्युम्न; प्रमुखाः—प्रमुख; चाक्षुष-आत्म-जाः—चाक्षुष के पुत्र।

चक्षु का पुत्र चाक्षुष कहलाया जो छठा मनु था। उसके कई पुत्र थे जिनमें पूरु, पूरुष तथा सुद्युम्न प्रमुख थे।

इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ।
मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; मन्त्रद्रुमः—मंत्रद्रुम नाम का; तत्र—छठे मन्वन्तर में; देवाः—देवतागण; आप्य-आदयः—आप्य तथा अन्य; गणाः—वह सभा; मुनयः—सप्तर्षि; तत्र—वहाँ; वै—निस्सन्देह; राजन्—हे राजा; हविष्मत्—हविष्मान् नाम का; वीरक-आदयः—वीरक तथा अन्य।

चाक्षुष मनु के राज्यकाल में स्वर्ग का राजा मंत्रद्रुम के नाम से विख्यात था। देवताओं में आप्यगण तथा सप्तर्षियों में हविष्मान् तथा वीरक प्रमुख थे।

तत्रापि देवसम्भूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः ।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्र अपि—पुनः उसी छठे मन्वन्तर में; देवसम्भूत्याम्—देवसम्भूति से; वैराजस्य—उसके पति वैराज का; अभवत्—हुआ; सुतः—पुत्र; अजितः नाम—अजित नामक; भगवान्—भगवान्; अंशेन—अंश से; जगतः पतिः—ब्रह्माण्ड का स्वामी।

इस छठे मन्वन्तर में ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् विष्णु अपने अंश रूप में प्रकट हुए। वे वैराज की पत्नी देवसम्भूति के गर्भ से उत्पन्न हुए और उनका नाम अजित था।

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ।
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

पयोधिम्—क्षीर सागर; येन—जिसके द्वारा; निर्मथ्य—मथा जाकर; सुराणाम्—देवताओं का; साधिता—उत्पन्न किया; सुधा—अमृत; भ्रममाणः—इधर-उधर भ्रमण करते हुए; अम्भसि—जल के भीतर; धृतः—टिका हुआ था; कूर्म-रूपेण—कछुवे के रूप में; मन्दरः—मन्दर पर्वत।

क्षीरसागर का मंथन करके अजित ने देवताओं के लिए अमृत उत्पन्न किया। कछुवे के रूप में वे महान् मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किये इधर-उधर हिल-डुल रहे थे।

श्रीराजोवाच
यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ।
यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥ ११ ॥
यथामृतं सुरैः प्राप्तं किं चान्यदभवत्ततः ।
एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने प्रश्न किया; यथा—जिस तरह; भगवता—भगवान् के द्वारा; ब्रह्मन्—हे विद्वान ब्राह्मण; मथितः—मथा गया; क्षीर-सागरः—दूध का सागर; यत्-अर्थम्—क्या उद्देश्य था; वा—अथवा; यतः—जहाँ से, किस कारण से; च—तथा; अद्रिम्—पर्वत को (मन्दर); दधार—धारण किया; अम्बुचर-आत्मना—कछुवे के रूप में; यथा—जिस तरह; अमृतम्—अमृत; सुरैः—देवताओं द्वारा; प्राप्तम्—प्राप्त किया गया था; किम्—क्या; च—तथा; अन्यत्—दूसरा; अभवत्—बन गया; ततः—तत्पश्चात्; एतत्—ये सभी; भगवतः—भगवान् के; कर्म—कार्यकलाप, लीलाएँ; वदस्व—कृपा करके बतलायें; परम-अद्भुतम्—जो इतने अद्भुत हैं।

राजा परीक्षित ने पूछा : हे परम ब्राह्मण, शुकदेव गोस्वामी! भगवान् विष्णु ने क्षीरसागर का मंथन क्यों और कैसे किया? वे कच्छप रूप में जल के भीतर किसलिए रहे और मन्दर पर्वत को क्यों धारण किये रहे? देवताओं ने किस तरह अमृत प्राप्त किया? और सागर मन्थन से अन्य कौन-कौन सी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं? कृपा करके भगवान् के इन सारे अद्भुत कार्यों का वर्णन करें।

त्वया सङ्कथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ।
नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

त्वया—आपके द्वारा; सङ्कथ्यमानेन—वर्णन किया जा रहे; महिम्ना—सारी महिमा से; सात्वताम् पतेः—भक्तों के स्वामी, भगवान् का; न—नहीं; अति-तृप्यति—अत्यधिक तुष्ट होता है; मे—मेरा; चित्तम्—हृदय; सुचिरम्—दीर्घकाल तक; ताप—दुख से; तापितम्—दुखित होकर।

मेरा हृदय भौतिक जीवन के तीन तापों से विचलित है, किन्तु वह अब भी आपके द्वारा वर्णित किये जा रहे भक्तों के स्वामी भगवान् के यशस्वी कार्यकलापों को सुनकर तृप्त नहीं हुआ है।

श्रीसूत उवाच
सम्पृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ।
अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्रीसूत गोस्वामी ने कहा; सम्पृष्टः—पूछे जाने पर; भगवान्—शुकदेव गोस्वामी ने; एवम्—इस प्रकार; द्वैपायन-सुतः—व्यासदेव के पुत्र; द्वि-जाः—यहाँ पर समवेत ब्राह्मण; अभिनन्द्य—महाराज को बधाई देकर; हरेः वीर्यम्—भगवान् के यश को; अभ्याचष्टुम्—वर्णन करने के लिए; प्रचक्रमे—प्रयास किया।

श्रीसूत गोस्वामी ने कहा : यहाँ नैमिषारण्य में एकत्रित हे विद्वान ब्राह्मणो! जब द्वैपायन पुत्र शुकदेव गोस्वामी से राजा ने इस तरह से प्रश्न पूछा तो उन्होंने राजा को बधाई दी और भगवान् के यश को और भी आगे वर्णन करने का प्रयास किया।

श्रीशुक उवाच
यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बध्यमानाः शितायुधैः ।
गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूरिशः ॥ १५॥
यदा दुर्वासः शापेन सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप ।
निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥ १६॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; यदा—जब; युद्धे—युद्ध में; असुरैः—असुरों द्वारा; देवाः—देवतागण; बध्यमानाः—बाँधे गये; शित-आयुधैः—सर्प-आयुधों द्वारा; गत-आसवः—प्रायः मृत; निपतिताः—गिरे हुए कुछ लोग; न—नहीं; उत्तिष्ठेरन्—पुनः उठ पाये; स्म—ऐसे हो गये; भूरिशः—उनमें से अधिकांश; यदा—जब; दुर्वासः—दुर्वासा मुनि के; शापेन—शाप से; स-इन्द्राः—इन्द्र समेत; लोकाः त्रयः—तीनों लोक; नृप—हे राजा; निःश्रीकाः—बिना किसी भौतिक ऐश्वर्य के; च—भी; अभवन्—हो गया; तत्र—उस समय; नेशुः—सम्पन्न नहीं हो सका; इज्य-आदयः—यज्ञ; क्रियाः—अनुष्ठान।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब असुरों ने अपने-अपने सर्प-आयुधों से युद्ध में देवताओं पर घमासान आक्रमण कर दिया तो अनेक देवता धराशायी हो गये और मर गये। वे फिर से जीवित नहीं किये जा सके। हे राजा! उस समय देवताओं को दुर्वासा मुनि ने शाप दिया हुआ था, तीनों लोक दरिद्रता से पीड़ित थे; इसीलिए अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो पा रहे थे। इसके प्रभाव अत्यन्त गम्भीर थे।

तात्पर्य : ऐसा वर्णन मिलता है कि जब दुर्वासा मुनि मार्ग पर जा रहे थे तो उन्होंने इन्द्र को अपने

हाथी की पीठ पर बैठे देखा। उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी एक माला उतारकर इन्द्र के गले में डाल दी। किन्तु गर्वित होने के कारण इन्द्र ने दुर्वासा मुनि के आदर का ध्यान न रखते हुए वह माला उठाकर अपने वाहन हाथी की सूंड़ में पहना दी। हाथी पशु होने के कारण उस माला के महत्त्व को नहीं समझ पाया; अतएव उसने वह माला नीचे गिरा दी और उसे अपने पैरों से रौंद डाला। इस अपमानजनक व्यवहार को देखकर दुर्वासा मुनि ने तुरन्त ही इन्द्र को समग्र भौतिक ऐश्वर्य से रहित दरिद्र होने का शाप दे डाला। इस प्रकार एक ओर युद्ध कर रहे असुरों से दुखी होकर और दूसरी ओर दुर्वासा मुनि के शाप के कारण देवताओं ने तीनों लोकों का अपना सारा भौतिक ऐश्वर्य खो दिया।

भौतिकतावादी उन्नति में अत्यधिक ऐश्वर्यवान् होना कभी-कभी घातक होता है। ऐश्वर्यवान् व्यक्ति किसी की परवाह नहीं करता और इस तरह वह महापुरुषों यथा भक्तों तथा महान् सन्तों के प्रति अपराध करता है। भौतिक ऐश्वर्य की यही शैली है। जैसाकि शुकदेव गोस्वामी ने कहा है—*धनदुर्मदान्ध*—अर्थात् अत्यधिक धन से आदमी अन्धा बन जाता है। स्वर्ग में इन्द्र तक के साथ यही होता है; तो फिर इस भौतिक लोक के लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है? ऐश्वर्यवान् होने पर मनुष्य को वैष्णवों एवं सन्त पुरुषों के प्रति गम्भीर होना तथा अच्छा व्यवहार करना सीखना चाहिए अन्यथा उसका पतन हो जायेगा।

निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ।
नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चितम् ॥ १७॥
ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ।
सर्वं विज्ञापयां चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८॥

शब्दार्थ

निशाम्य—सुनकर; एतत्—यह घटना; सुर-गणाः—सारे देवता; महा-इन्द्र—राजा इन्द्र; वरुण-आदयः—वरुण तथा अन्य देवता; न—नहीं; अध्यगच्छन्—पहुँचे; स्वयम्—साक्षात्; मन्त्रैः—मंत्रणा द्वारा, आपसी विचार-विमर्श करके; मन्त्रयन्तः—विचार-विमर्श करते हुए; विनिश्चितम्—असली निष्कर्ष; ततः—तत्पश्चात्; ब्रह्म-सभाम्—ब्रह्माजी की सभा में; जग्मुः—गये; मेरोः—सुमेरु पर्वत की; मूर्धनि—चोटी पर; सर्वशः—सबों ने; सर्वम्—सारी बातें; विज्ञापयाम् चक्रुः—सूचित किया; प्रणताः—नमस्कार किया; परमेष्ठिने—ब्रह्मा को।

अपने जीवनों को ऐसी स्थिति में देखकर इन्द्र, वरुण तथा अन्य देवताओं ने परस्पर विचार-विमर्श किया, किन्तु उन्हें कोई हल न मिल सका। तब सारे देवता एकत्र हुए और वे एकसाथ सुमेरु पर्वत की चोटी पर गये। वहाँ पर ब्रह्मा जी की सभा में सब ने ब्रह्मा जी को साष्टांग प्रणाम

किया और जितनी सारी घटनाओं से अवगत कराया।

स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निःसत्त्वान्विगतप्रभान् ।
लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १९ ॥
समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ।
उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सः—ब्रह्मा ने; विलोक्य—देखकर; इन्द्र-वायु-आदीन्—इन्द्र, वायु इत्यादि देवताओं को; निःसत्त्वान्—आध्यात्मिक शक्ति से विहीन; विगत-प्रभान्—सारे तेज से रहित; लोकान्—तीनों लोकों को; अमङ्गल-प्रायान्—दुर्भाग्य में डूबे; असुरान्—सारे असुरों को; अयथाः—समृद्धि वाले; विभुः—ब्रह्मा, जो इस जगत में परम हैं; समाहितेन—पूरी तरह समंजित करके; मनसा—मन से; संस्मरन्—पुनः पुनः स्मरण करके; पुरुषम्—परम पुरुष को; परम्—दिव्य; उवाच—कहा; उत्फुल्ल-वदनः—प्रसन्न मुख; देवान्—देवताओं को; सः—वह; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; परः—देवताओं का।

यह देखकर कि सारे देवता प्रभावहीन तथा बलहीन हो गये हैं जिसके फलस्वरूप तीनों लोक अमंगलमय हो चुके हैं तथा यह देखकर कि देवताओं की स्थिति अटपटी है, किन्तु असुरगण फल-फूल रहे हैं ब्रह्मा ने, जो समस्त देवताओं के ऊपर हैं और अत्यन्त शक्तिशाली हैं अपना मन भगवान् पर केन्द्रित किया। इस प्रकार प्रोत्साहित होने से उनका मुख चमक उठा और वे देवताओं से इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : देवताओं से असली स्थिति के बारे में सुनकर ब्रह्माजी अत्यन्त चिन्तित हुए क्योंकि असुर बिना कारण अत्यधिक बलशाली बन चुके थे। जब असुर बलशाली बन जाते हैं, तो सारा संसार विकट स्थिति में पड़ जाता है क्योंकि असुरगण केवल अपनी इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं, विश्व कल्याण से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता, किन्तु देवता या भक्तगण सारे जीवों के कल्याण के लिए चिन्तित रहते हैं। उदाहरणार्थ, श्रील रूप गोस्वामी मंत्री पद त्याग कर सारे विश्व के लाभ हेतु वृन्दावन चले गये (*लोकानां हितकारिणौ*)। यह सन्त पुरुष या देवता का गुण है। निर्विशेषवादी तक सभी लोगों का कल्याण-चिन्तन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजी असुरों को शक्तिशाली होते देखकर अत्यधिक चिन्तित हुए।

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो
मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ।
यस्यावतारांशकलाविसर्जिता

व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; भवः—शिवजी; यूयम्—तुम सारे देवता; अथो—तथा; असुर-आदयः—असुर इत्यादि; मनुष्य—मनुष्य; तिर्यक्—पशु; द्रुम—वृक्ष एवं पौधे; घर्म-जातयः—पसीने से उत्पन्न कीड़े-मकोड़े; यस्य—जिस (भगवान्) का; अवतार—पुरुष अवतार का; अंश—उनके अंश, गुण अवतार, ब्रह्मा का; कला—ब्रह्मा के पुत्रों का; विसर्जिताः—पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पन्न; व्रजाम—जायेंगे; सर्वे—हम सभी; शरणम्—शरण में; तम्—उस; अव्ययम्—अव्यय ब्रह्म की।

ब्रह्माजी ने कहा : मैं, शिवजी, तुम सारे देवता, असुर, स्वेदज प्राणी, अण्डज, पृथ्वी से उत्पन्न पेड़-पौधे तथा भ्रूण से उत्पन्न सारे जीव—सभी भगवान् से उन के रजोगुण अवतार (ब्रह्मा, गुणअवतार) से तथा ऋषियों से जो मेरे ही अंश हैं। अतएव हम सभी उन भगवान् के पास चलें और उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करें।

तात्पर्य : कुछ प्राणी भ्रूण से उत्पन्न होते हैं, कुछ पसीने से और कुछ बीज से। इस प्रकार सारे जीव भगवान् के गुणावतार से उत्पन्न होते हैं। अन्ततोगत्वा भगवान् ही सारे जीवों के आश्रय हैं।

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो
नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः ।
तथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं
धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यस्य—जिसके (भगवान्) द्वारा; वध्यः—मारा जाने वाला; न—न तो; च—भी; रक्षणीयः—रक्षा का पात्र; न—न तो; उपेक्षणीय—उपेक्षणीय; आदरणीय—पूजनीय; पक्षः—अंश; तथापि—फिर भी; सर्ग—सृष्टि; स्थिति—पालन; संयम—तथा संहार; अर्थम्—के लिए; धत्ते—स्वीकार करता है; रजः—रजोगुण; सत्त्व—सतोगुण; तमांसि—तथा तमोगुण को; काले—समय आने पर।

भगवान् के लिए न तो कोई वध्य है, न रक्षणीय, न उपेक्षणीय और न पूजनीय। फिर भी समयानुसार सृष्टि, पालन तथा संहार के लिए वे सतो, रजो या तमो गुण में विभिन्न रूपों में अवतार लेना स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य : यह श्लोक बताता है कि भगवान् सब पर समभाव रखते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.२९) में स्वयं भगवान् करते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

"न तो मैं किसी से ईर्ष्या करता हूँ, न किसी का पक्ष लेता हूँ। मैं सब पर समभाव रखता हूँ।

किन्तु जो भी भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है, वह मुझमें है और मैं भी उसका मित्र हूँ।'' यद्यपि भगवान् निष्पक्ष रहते हैं, किन्तु वे अपने भक्तों का विशेष ध्यान रखते हैं। अतएव भगवान् *भगवद्गीता* (४.८) में कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

''पुण्यात्माओं का उद्धार तथा दुष्टों का संहार करने के साथ-साथ धर्म के सिद्धान्तों की पुन: स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतरित होता हूँ।'' भगवान् को किसी की रक्षा या विनाश से कोई सरोकार नहीं रहता, किन्तु इस भौतिक जगत के सृजन, पालन तथा संहार के लिए उन्हें बाह्य रूप से सतो, रजो या तमोगुण में कर्म करना पड़ता है। किन्तु वास्तव में वे भौतिक प्रकृति के इन गुणों से प्रभावित नहीं होते। वे हरएक के परमेश्वर हैं। जैसे राजा विधि तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए कभी-कभी किसी को दण्ड देते हैं या पुरस्कृत करते हैं वैसे ही इस जगत के कार्यकलापों से कुछ सरोकार न होने पर भी वे कभी-कभी देश, काल तथा वस्तु के अनुसार विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं।

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षण:
सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् ।
तस्माद्व्रजाम: शरणं जगद्गुरुं
स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रिय: ॥ २३॥

शब्दार्थ

अयम्—यह अवधि; च—भी; तस्य—भगवान् की; स्थिति-पालन-क्षण:—पालन या अपना शासन स्थापित करने का समय; सत्त्वम्—सतोगुण; जुषाणस्य—(अब बिना प्रतीक्षा किये) स्वीकार करते हुए; भवाय—अधिक उन्नति के लिए; देहिनाम्—भौतिक शरीरधारियों का; तस्मात्—इसलिए; व्रजाम:—जाना चाहिए; शरणम्—शरण में; जगत्-गुरुम्—भगवान् के चरणकमलों पर, जो संसार भर के गुरु हैं; स्वानाम्—हमारा अपना; स:—वह (भगवान्); न:—हमको; धास्यति—देगा; शम्—आवश्यक सौभाग्य; सुर-प्रिय:—देवताओं को स्वभावत: अत्यन्त प्रिय।

देहधारी जीवों के सतोगुण का आह्वान करने का यही अवसर है। सतोगुण भगवान् के शासन की स्थापना करने के निमित्त होता है, जो सृष्टि के अस्तित्व का पालन करेगा। अतएव भगवान् की शरण ग्रहण करने के लिए यह उपयुक्त समय है। चूँकि वे देवताओं पर स्वभावत: अत्यन्त दयालु हैं और उन्हें प्रिय हैं अतएव वे हमें निश्चय ही सौभाग्य प्रदान करेंगे।

तात्पर्य : भौतिक जगत का संचालन तीन गुणों से होता है—ये हैं सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। रजोगुण से भौतिक वस्तुओं का सृजन होता है, सत्त्वगुण से उनका ठीक से पालन होता है और जब सृष्टि ठीक से स्थित नहीं रहती तो तमोगुण से उनका विनाश हो जाता है।

इस श्लोक से हम कलियुग की स्थिति समझ सकते हैं जिसमें इस समय हम गुजर रहे हैं। कलियुग के प्रारम्भ में या यों कहें कि द्वापरयुग के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए और *भगवद्गीता* के रूप में अपने उपदेश छोड़ते गये जिसमें उन्होंने सभी जीवों को अपनी शरण में आने के लिए कहा है। किन्तु कलियुग के प्रारम्भ से ही लोग कृष्ण के चरणकमलों पर आत्मसमर्पण नहीं कर पा रहे हैं; अतएव लगभग पाँच हजार वर्षों के बाद कृष्ण पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में सारे विश्व को यह सिखाने के लिए आये कि कृष्ण की शरण कैसे ग्रहण की जाये और किस तरह शुद्ध हुआ जाये।

भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने का अर्थ है पूर्ण शुद्धि प्राप्त करना। *भगवद्गीता* (१८.६६) में कृष्ण कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

''तुम सारे विभिन्न धर्मों को त्याग दो और केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों के फल से बचा लूँगा। तुम डरो मत।'' इस तरह जैसे ही कोई कृष्ण के चरणकमलों की शरण में जाता है त्योंही वह निश्चित रूप से समस्त कल्मष से मुक्त हो जाता है।

कलियुग कल्मष से ओतप्रोत है। इसका वर्णन *श्रीमद्भागवत* (१२.३.५१) में हुआ है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

यह कलियुग अनन्त दोषों से पूर्ण है। निस्सन्देह, यह दोषों के सागर (दोष-निधि) के समान है। किन्तु इसमें एक ऐसा अवसर भी है—*कीर्तनाद् एव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्*—केवल हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करके मनुष्य कलियुग के कल्मष से छूट सकता है और वह अपने मूल आध्यात्मिक शरीर में भगवद्धाम को लौट सकता है। कलियुग का यही शुभ अवसर है।

जब कृष्ण प्रकट हुए तो उन्होंने आदेश दिये और जब वे भक्त रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में स्वयं प्रकट हुए तो उन्होंने हमें वह मार्ग दिखलाया जिससे कलियुग के सागर को पार किया जा सके। वह हरे कृष्ण आन्दोलन का मार्ग है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए तो उन्होंने *सङ्कीर्तन* आन्दोलन के युग का सूत्रपात किया। यह भी कहा जाता है कि यह युग दस हजार वर्षों तक रहेगा। इसका अर्थ होता है कि *सङ्कीर्तन* आन्दोलन को स्वीकार करने तथा हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने मात्र से इस कलियुग की पतितात्माओं का उद्धार हो जायेगा। कुरुक्षेत्र युद्ध जिसमें *भगवद्गीता* का प्रवचन हुआ था, के पश्चात् कलियुग को ४,३२,००० हजार वर्षों तक रहना है, जिसमें से केवल ५,००० हजार वर्ष बीते हैं। इस प्रकार अब भी ४,२७,००० वर्ष शेष हैं। इनमें से अगले १०,००० वर्षों तक श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा ५०० वर्ष पूर्व उद्घाटित सङ्कीर्तन आन्दोलन कलियुग की पतितात्माओं को कृष्णभावनामृत आन्दोलन स्वीकार करने, हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने एवं संसार के पाश से छूटकर भगवद्धाम वापस जाने का सुअवसर प्राप्त होता रहेगा।

हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन सदैव शक्तिमान रहा है, किन्तु कलियुग के लिए यह विशेषतया शक्तिमान है। अतएव महाराज परीक्षित को उपदेश देते हुए शुकदेव गोस्वामी ने हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन पर बल दिया—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

''हे राजा! यद्यपि यह कलियुग दोषों से पूर्ण है, किन्तु फिर भी इस युग का एक उत्तम गुण है। वह गुण यह है कि हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से ही मनुष्य भवबन्धन से मुक्त होकर दिव्य लोक को जा सकता है।'' (*भागवत* १२.३.५१)। जिन लोगों ने पूर्णतया कृष्णभावनामृत में रहकर हरे कृष्ण महामंत्र का प्रसार करने का कार्य स्वीकार किया है उन्हें लोगों को भवबन्धन से आसानी से उबारने के इस सुअवसर का लाभ उठाना चाहिए। अतएव, हमारा कर्तव्य है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का अनुगमन करें और निष्ठापूर्वक सारे विश्व में कृष्णभावनामृत आन्दोलन (कृष्ण भक्ति) का प्रचार करें। मानव समाज की शान्ति तथा समृद्धि के लिए यह सर्वोत्तम कल्याण-कार्य है।

श्री चैतन्य महाप्रभु का आन्दोलन *कृष्ण-सङ्कीर्तन* के प्रसार में निहित है। *परं विजयते श्रीकृष्ण*

सङ्कीर्तनम्—श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन की जय हो। यह इतना यशस्वी क्यों है? इसकी भी व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु ने की है। *चेतो दर्पणमार्जनम्*—हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से मनुष्य का हृदय स्वच्छ होता है। सारी कठिनाई तो यह है कि इस कलियुग में सत्त्वगुण नहीं रह गया है और लोगों के हृदय स्वच्छ नहीं हैं; अतएव लोग अपने शरीर को ही आत्मा मानने की भूल कर रहे हैं। यहाँ तक कि बड़े-बड़े विचारक तथा विज्ञानी भी जिनसे हमारा सम्पर्क होता है इस विचार के हैं कि वे शरीर हैं। अभी उसी दिन हम एक प्रमुख विचारक टामस हक्सले से विचार-विमर्श कर रहे थे, जिन्हें अंग्रेज होने का गर्व था। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें देहात्मबुद्धि थी। यह भ्रम हमें सर्वत्र मिलता है। मनुष्य में देहात्मबुद्धि के आने पर वह बिल्ली या कुत्ते जैसा पशु बन जाता है (*स एव गोखरः*)। इस प्रकार हमारे हृदयों में जो सबसे गंदी वस्तुएँ हैं, उनमें से सब से अधिक खतरनाक वस्तु शरीर को ही आत्मा मानने की भ्रान्त धारणा है। इस भ्रान्ति में आकर मनुष्य सोचता है ''मैं यह शरीर हूँ। मैं अंग्रेज हूँ। मैं भारतीय हूँ। मैं अमरीकी हूँ। मैं हिन्दू हूँ। मैं मुसलमान हूँ।'' यही भ्रान्त धारणा सबसे बड़ा अवरोध है और इसे हटाना होगा। *भगवद्गीता* का और श्री चैतन्य महाप्रभु का यही आदेश है। निस्सन्देह, *भगवद्गीता* का शुभारम्भ ही इस आदेश से होता है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

''जिस प्रकार देहधारी आत्मा इस शरीर में निरन्तर बचपन से युवावस्था और फिर बुढ़ापे में चलता रहता है उसी तरह आत्मा मृत्यु के समय दूसरे शरीर में चला जाता है।'' किन्तु इस परिवर्तन के स्वयं सिद्ध आत्मा विचलित नहीं होता (*भगवद्गीता* २.१३)। यद्यपि आत्मा शरीर के भीतर रहता है लेकिन भ्रान्ति एवं पशु-प्रवृत्ति के कारण मनुष्य शरीर को ही आत्मा मान बैठता है। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु का कहना है—*चेतोदर्पणमार्जनम्।* भ्रान्तियों से पूर्ण हृदय को पूरी तरह स्वच्छ करना मात्र *श्रीकृष्ण सङ्कीर्तन* के माध्यम से सम्भव है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अग्रणी लोगों को इस सुअवसर पर गम्भीरता से विचार करके पतितात्माओं पर दयालु बनकर उन्हें भौतिक जीवन की भ्रान्तियों से उबारना चाहिए।

मनुष्य इस भौतिक संसार में किसी भी तरह से सुखी नहीं हो सकता। जैसाकि *भगवद्गीता*

(८.१६) में कहा गया है—

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन

''इस भौतिक जगत में सर्वोच्च लोक से निम्नतम लोक तक सभी दुख के स्थान हैं जहाँ बारम्बार जन्म तथा मृत्यु होते रहते हैं।'' अतएव चन्द्रमा तक जाने की कौन कहे, यदि कोई सर्वोच्च लोक, ब्रह्मलोक, भी चला जाये तो भी इस भौतिक जगत में कहीं सुख नहीं है। यदि कोई सचमुच सुख चाहता है, तो उसे वैकुण्ठलोक जाना चाहिए। भौतिक जगत जीवन-संघर्ष के लिए प्रसिद्ध है और योग्यतम की उत्तरजीविता सुप्रसिद्ध सिद्धान्त हैं, किन्तु इस जगत के बेचारे लोग यह नहीं जानते कि उत्तरजीविता क्या है और सक्षम कौन है? उत्तरजीविता का अर्थ यह नहीं होता कि कोई मर जाये। इसका अर्थ यह है कि वह मरे नहीं अपितु ज्ञान के शाश्वत आनन्दमय जीवन का भोग करे। यह उत्तरजीविता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन हर व्यक्ति को उत्तरजीविता के लिए सक्षम बनाने के निमित्त है। निस्सन्देह, यह जीवन-संघर्ष को रोकने के निमित्त है। *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* जीवन-संघर्ष को रोकने के लिए निश्चित आदेश देते हैं और बताते हैं कि नित्य जीवन में किस प्रकार उत्तरजीवी बना जाये। अतएव सङ्कीर्तन आन्दोलन एक महान् अवसर है। मात्र *भगवद्गीता* का श्रवण करने एवं हरे कृष्ण महामंत्र का सङ्कीर्तन करने से मनुष्य पूर्ण शुद्ध हो जाता है। इस तरह जीवन-संघर्ष का अन्त हो जाता है और मनुष्य भगवद्धाम को वापस जाता है।

श्रीशुक उवाच
इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम ।
अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आभाष्य—बातें करके; सुरान्—देवताओं को; वेधाः—ब्रह्माण्ड के प्रधान तथा सब को वैदिक ज्ञान प्रदान करने वाले ब्रह्माजी; सह—साथ; देवैः—देवताओं के; अरिम्-दम—सारे शत्रुओं (यथा इन्द्रियों) का दमन करने वाले, हे महाराज परीक्षित; अजितस्य—भगवान् के; पदम्—स्थान तक; साक्षात्—प्रत्यक्ष; जगाम—गये; तमसः—अंधकार के संसार से; परम्—परे।.

हे समस्त शत्रुओं का दमन करने वाले महाराज परीक्षित! देवताओं से बातें करने के बाद ब्रह्माजी उन्हें भगवान् के धाम ले गये जो इस भौतिक जगत से परे है। भगवान् का धाम श्वेतद्वीप नामक टापू में है, जो क्षीर सागर में स्थित है।

तात्पर्य : यहाँ पर महाराज परीक्षित को *अरिन्दम* अर्थात् 'शत्रुओं का दमन करने वाला' कहा गया

है। ऐसा नहीं है कि हमारे शत्रु शरीर के बाहर ही हैं, अपितु हमारे शरीर के भीतर भी अनेक हैं—यथा काम, क्रोध, लोभ। महाराज परीक्षित को विशेष रूप से *अरिन्दम* कहा गया है क्योंकि वे अपने राजनैतिक जीवन में सभी प्रकार के शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे और तरुण नृप होते हुए भी जब उन्होंने सुना कि वे सात दिनों के भीतर मरने वाले हैं, तो उन्होंने तुरन्त अपना साम्राज्य त्याग दिया। उन्होंने अपने शरीर के भीतर स्थित शत्रुओं यथा काम, क्रोध तथा लोभ के आदेशों को नहीं माना। वे उस मुनि के पुत्र पर तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुए जिसने उन्हें शाप दिया था। प्रत्युत उस शाप को स्वीकार करते हुए उन्होंने शुकदेव गोस्वामी के सान्निध्य में मरने की तैयारी की। मृत्यु अवश्यम्भावी है, कोई भी मृत्यु की शक्ति पार नहीं पा सकता। अतएव महाराज परीक्षित यह सब जानते हुए *श्रीमद्भागवत* सुनने के इच्छुक थे। फलस्वरूप उन्हें यहाँ *अरिन्दम* कहा गया है।

एक अन्य शब्द *सुर-प्रिय* भी महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि भगवान् कृष्ण सब पर समान भाव रखते हैं, किन्तु वे अपने भक्तों पर विशेष तौर पर कृपालु रहते हैं (*ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्*)। सारे भक्त देवता होते हैं। इस संसार में दो प्रकार के लोग हैं—एक *देव* कहलाते हैं और दूसरे *असुर*। *पद्मपुराण* का कथन है—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।

विष्णुभक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः॥

जो कोई भी भगवान् कृष्ण का भक्त है, वह देव कहलाता है और अन्य लोग, चाहे वे देवताओं के भक्त ही क्यों न हों, असुर कहलाते हैं। उदाहरणार्थ, रावण शिवजी का महान् भक्त था, किन्तु उसे असुर कहा जाता है। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का महान् भक्त कहा जाता है, तो भी वह असुर था। अतएव केवल भगवान् विष्णु का भक्त *सुर* कहलाता है, *असुर* नहीं। भगवान् कृष्ण अपने भक्तों पर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं, भले ही ये भक्त भक्ति की चरमावस्था को प्राप्त न हों। भक्ति की निम्नतर अवस्थाओं में भी मनुष्य दिव्य होता है और यदि वह भक्ति करता रहे तो वह *देव* या *सुर* ही बना रहता है। यदि कोई इसी तरह रहे तो कृष्ण उस पर सदैव प्रसन्न रहेंगें और उसे उपदेश देंगे जिससे वह आसानी से भगवद्धाम वापस जा सके।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भौतिक जगत के क्षीरसागर स्थित भगवान् के निवास स्थान,

अजितस्य पदम् के विषय में इस प्रकार कहा है— *पदं क्षीरोदधिस्थ श्वेतदीपं तमसः प्रकृतेः परम्*—यह द्वीप श्वेतद्वीप कहलाता है, जो क्षीरसागर में है और दिव्य है। इसका इस भौतिक जगत से कोई वास्ता नहीं है। किसी शहर में सरकार का विश्राम-गृह होता है जहाँ राज्यपाल तथा अन्य महत्त्वपूर्ण सरकारी अधिकारी ठहरते हैं। ऐसा विश्राम-गृह सामान्य घर नहीं होता। इसी प्रकार से श्वेतद्वीप जो क्षीरसागर में स्थित है इसी जगत में है, किन्तु यह *परं पदम्* या दिव्य है।

तत्राद्दष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै प्रभुः ।
स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (श्वेतद्वीप में); अदृष्ट-स्वरूपाय—भगवान् को, जिन्हें ब्रह्मा तक ने नहीं देखा था; श्रुत-पूर्वाय—किन्तु जो वेदों से सुने गए थे; वै—निस्सन्देह; प्रभुः—ब्रह्माजी; स्तुतिम्—वैदिक वाङ्मय से प्राप्त स्तुति; अब्रूत—की गई; दैवीभिः—स्तुतियों द्वारा, या वैदिक सिद्धान्तों को पालने वाले व्यक्तियों द्वारा; गीर्भिः—ऐसे गीतों या उच्चारणों द्वारा; तु—तब; अवहित-इन्द्रियः—स्थिरचित्त।

वहाँ (श्वेतद्वीप में) ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की, यद्यपि उन्होंने परमेश्वर को इसके पूर्व कभी नहीं देखा था। चूँकि उन्होंने वैदिक वाङ्मय से भगवान् के विषय में सुना हुआ था अतएव उन्होंने स्थिरचित्त होकर भगवान् की उसी तरह स्तुति की जिस प्रकार वैदिक साहित्य में लिखी हुई या मान्य है।

तात्पर्य : कहा जाता है कि जब ब्रह्मा तथा अन्य देवता श्वेतद्वीप में भगवान् का दर्शन करने जाते हैं, तो वे उनका साक्षात् दर्शन नहीं कर पाते अपितु उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् आवश्यक कार्यवाही करते हैं। ऐसा हमने अनेक बार देखा है। *श्रुतपूर्वाय* शब्द महत्त्वपूर्ण है। प्रत्यक्ष दर्शन करने या सुनने से हमें अनुभव होता है। यदि किसी का प्रत्यक्ष दर्शन कर पाना सम्भव नहीं होता तो उसके विषय में प्रामाणिक स्रोतों से सुना जा सकता है। कभी-कभी लोग पूछते हैं कि क्या हम उन्हें ईश्वर का दर्शन करा सकते हैं? यह अत्यन्त हास्यास्पद है। ईश्वर को स्वीकार करने के पूर्व उनका दर्शन करना आवश्यक नहीं होता। हमारा इन्द्रियबोध सदा अपूर्ण रहता है; अतएव ईश्वर का दर्शन कर लेने पर भी हम उन्हें नहीं समझ सकेंगे। जब कृष्ण इस धरा पर थे तो अनेकानेक लोगों ने उन्हें देखा था, किन्तु वे यह नहीं समझ पाये कि वे भगवान् हैं। *अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।* यद्यपि धूर्तों तथा मूर्खों ने कृष्ण को साक्षात् देखा था, किन्तु वे यह नहीं समझ सके थे कि वे भगवान् हैं। ईश्वर का

साक्षात् दर्शन करके भी अभागा मनुष्य उन्हें समझ नहीं सकता। अतएव हमें प्रामाणिक वैदिक साहित्य से तथा वेदों को समुचित रूप से समझने वाले पुरुषों से भगवान् कृष्ण के विषय में सुनना होता है। यद्यपि ब्रह्मा ने भगवान् को इसके पूर्व नहीं देखा था, किन्तु उनका दृढ़ विश्वास था कि वे श्वेतद्वीप में थे। इस तरह उन्होंने अवसर का लाभ उठाया, वे वहाँ गये और उनकी स्तुति की।

ये स्तुतियाँ सामान्य कल्पित स्तुतियाँ नहीं थीं। स्तुतियों को वेदसम्मत होना चाहिए जैसाकि इस श्लोक में आगत *दैविभिर्गीर्भि:* शब्दों से सूचित होता है। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में किसी ऐसे गीत की अनुमति नहीं देते जो पहले से स्वीकृत न हो या प्रामाणिक भक्तों द्वारा गाया न गया हो। हम मन्दिर में फिल्मी गानों को गाये जाने की अनुमति नहीं दे सकते। हम प्राय: दो गीत गाते हैं। एक है—*श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैतगदाधर श्रीवासादि-गौर-भक्तवृन्द।* यह प्रामाणिक गीत है। इसका उल्लेख *चैतन्य चरितामृत* में सदा होता है और आचार्यों ने इसे स्वीकार किया है। दूसरा गीत है—महामंत्र—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। हम नरोत्तम दास ठाकुर, भक्तिविनोद ठाकुर तथा लोचनदास ठाकुर के भी गीत गा सकते हैं लेकिन उपर्युक्त दोनों गीत भगवान् को प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त हैं, भले ही हम उनका दर्शन न कर सकें। भगवान् का दर्शन करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि प्रामाणिक साहित्य या अधिकारी जनों के प्रामाणिक वक्तव्यों के द्वारा उनकी प्रंशसा करना।

श्रीब्रह्मोवाच
अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं
नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; अविक्रियम्—अविकारी भगवान् को; सत्यम्—परम सत्य; अनन्तम्—अनन्त; आद्यम्—समस्त कारणों के आदि कारण; गुहा-शयम्—प्रत्येक हृदय में उपस्थित; निष्कलम्—शक्ति का ह्रास हुए बिना; अप्रतर्क्यम्—अचिन्त्य, जो भौतिक तर्कों की सीमा से परे हैं; मन:-अग्रयानम्—मन से भी अधिक वेगवान्; वचसा—शब्द जाल से; अनिरुक्तम्—अवर्णनीय; नमामहे—हम सभी देवता आपको नमस्कार करते हैं; देव-वरम्—उन परमेश्वर को जिनकी न तो कोई तुलना कर सकता है, न उनसे बढ़कर है; वरेण्यम्—परम पूज्य, जिनकी पूजा गायत्री मंत्र द्वारा की जाती है।

ब्रह्माजी ने कहा : हे परमेश्वर, हे अविकारी, असीम परम सत्य! आप हर वस्तु के उद्गम हैं। सर्वव्यापी होने के कारण आप प्रत्येक के हृदय में और परमाणु में भी रहते हैं। आपमें कोई

भौतिक गुण नहीं पाये जाते। निस्सन्देह, आप अचिन्त्य हैं। मन आपको कल्पना से नहीं ग्रहण कर सकता और शब्द आपका वर्णन करने में असमर्थ हैं। आप सब के परम स्वामी हैं; अतएव आप हर एक के आराध्य हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कोई भौतिक सृष्टि की वस्तु नहीं। प्रत्येक भौतिक वस्तु एक से दूसरे रूप में बदलती रहती है। उदाहरणार्थ, मिट्टी से पहले मिट्टी का पात्र बनता है और मिट्टी के पात्र से पुन: मिट्टी बनती है। हमारी सारी सृष्टियाँ क्षणिक एवं अस्थायी हैं, किन्तु भगवान् शाश्वत हैं। इसी प्रकार जीव, जो भगवान् के अंश हैं, भी शाश्वत हैं (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:*)। भगवान् सनातन या शाश्वत हैं और जीव भी सनातन हैं। अन्तर इतना ही है कि कृष्ण अर्थात् भगवान् परम सनातन हैं और जीव सूक्ष्म अंशरूप सनातन हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.३) में कहा गया है—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।* यद्यपि भगवान् जीव हैं और सारे व्यष्टि जीव भी जीव हैं, किन्तु भगवान्, जीवों से भिन्न होने के कारण, विभु (सर्वव्यापी) तथा अनन्त हैं। भगवान् हर वस्तु के कारणस्वरूप हैं। जीव असंख्य हैं, किन्तु भगवान् एक हैं। न तो कोई उनसे बड़ा है, न ही उनके तुल्य है। इस तरह जैसाकि वैदिक मंत्रों से पता चलता है, भगवान् परम पूज्य हैं (*न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते*)। भगवान् परम हैं क्योंकि कोई भी व्यक्ति कल्पना या वाग्जाल से उनका मूल्यांकन नहीं कर सकता। भगवान् मन से भी अधिक वेग से घूम सकते हैं। *ईशोपनिषद्* के श्रुतिमंत्रों में कहा गया है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।

तद्धावतोऽन्यानत्येतितिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिष्वा दधाति॥

''यद्यपि भगवान् अपने धाम में स्थिर हैं, किन्तु वे मन से भी अधिक वेगवान् हैं और दौने में अन्य सब को पिछाड़ सकते हैं। शक्तिशाली देवता उन तक नहीं पहुँच पाते। एक ही स्थान में रहते हुए वे वायु तथा वर्षा की पूर्ति करने वालों को नियंत्रित करते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ हैं।'' (*ईशोपनिषद्* ४)। इस तरह ब्रह्म की तुलना कभी भी अधीनस्थ जीवों से नहीं की जानी चाहिए।

चूँकि भगवान् सबके हृदय में स्थित हैं किन्तु व्यष्टि जीव ऐसा नहीं है, अतएव जीव की तुलना परमेश्वर से नहीं करनी चाहिए। *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कहते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्ट:*—मैं हरएक के हृदय में स्थित हूँ। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं होता कि हर व्यक्ति

भगवान् के तुल्य है। श्रुतिमंत्रों में यह भी कहा गया है— *हृदि ह्ययमात्मा प्रतिष्ठितः। श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में कहा गया है— *सत्यं परं धीमहि।* वेद मंत्र कहते हैं— *सत्यं ज्ञानमनन्तम्* तथा *निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यम्।* ईश्वर सर्वश्रेष्ठ हैं। यद्यपि वे स्वयं कुछ नहीं करते फिर भी वे ही सब कुछ करते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.४) में भगवान् कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

''यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से व्याप्त है, सारे प्राणी मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।''

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥

''हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है और समस्त चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। अपने नियम के अनुसार यह सृष्टि बारम्बार उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है।'' (*भगवद्गीता* ९.१०)। इस तरह भगवान् अपने धाम में मौन रहकर भी अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा सब कुछ करते रहते हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)।

ब्रह्मा द्वारा उच्चरित सारे वैदिक मंत्र या श्रुतिमंत्र, इस श्लोक में आये हैं, क्योंकि ब्रह्मा तथा उनके अनुयायी, जो ब्रह्मसम्प्रदाय के हैं, भगवान् को परम्परा-पद्धति से जानते हैं। हमें अपने पूर्वगामियों के वचनों से ज्ञान प्राप्त करना होता है। कुल बारह महाजन हैं जिनमें से ब्रह्मा भी एक हैं—

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥

(*भागवत* ६.३.२०)

हम लोग ब्रह्मा की परम्परा के हैं अतएव ब्रह्मसम्प्रदाय के नाम से जाने जाते हैं। चूँकि भगवान् को जानने के लिए देवता ब्रह्माजी का अनुसरण करते हैं अतएव हमें भी भगवान् को समझने के लिए परम्परा-पद्धति के महाजनों का अनुसरण करना चाहिए।

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मना-

मर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ
तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥ २७॥

शब्दार्थ

विपश्चितम्—सर्वज्ञ को; प्राण—किस तरह प्राण कार्यशील है; मनः—किस तरह मन कार्यशील है; धिय—किस तरह बुद्धि कार्यशील है; आत्मनाम्—सारे जीवों का; अर्थ—इन्द्रिय-विषय; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आभासम्—ज्ञान; अनिद्रम्—सदैव जाग्रत तथा अज्ञान से मुक्त; अव्रणम्—सुख तथा दुख से प्रभावित होने वाले भौतिक शरीर के बिना; छाया-आतपौ—अज्ञान से दुखी समस्त लोगों के आश्रय; यत्र—जहाँ; न—नहीं; गृध्र-पक्षौ—किसी भी जीव का पक्षपात; तम्—उसको; अक्षरम्—अच्युत; खम्—आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त; त्रि-युगम्—तीन युगों (सत्य, त्रेता तथा द्वापर) में छह ऐश्वर्यों समेत प्रकट होकर; व्रजामहे—मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

भगवान् प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जानते रहते हैं कि किस प्रकार प्राण, मन तथा बुद्धि समेत प्रत्येक वस्तु उनके नियंत्रण में कार्य करती है। वे हर वस्तु के प्रकाशक हैं और अज्ञान उन्हें छू तक नहीं गया। उनका भौतिक शरीर नहीं होता जो पूर्वकर्मों के फलों से प्रभावित हो। वे पक्षपात तथा भौतिकतावादी विद्या के अज्ञान से मुक्त हैं। अतएव मैं उन भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ जो नित्य, सर्वव्यापक तथा आकाश के समान विशाल हैं और तीनों युगों (सत्य, त्रेता तथा द्वापर) में अपने षड्ऐश्वर्यों समेत प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में भगवान् का वर्णन इस प्रकार हुआ है—*जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरश्चार्थेष्वभिज्ञः।* भगवान् समस्त उद्भावों के उद्गम हैं और वे अपनी सृष्टि के भीतर होने वाले प्रत्येक कार्यकलाप के विषय में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सब कुछ जानते हैं। अतएव भगवान् को यहाँ पर *विपश्चितम्* कहकर सम्बोधित किया गया है, जिसका अर्थ है ''समस्त ज्ञान से पूर्ण या सब कुछ जानने वाला।'' भगवान् परमात्मा हैं और वे सारे जीवों तथा उनकी इन्द्रियों के विषय में सब कुछ जानते हैं।

इस श्लोक में *अनिद्रम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है ''सदैव जागरूक तथा अज्ञान से रहित।'' जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—भगवान् ही हर एक को बुद्धि प्रदान करते हैं और उनमें विस्मृति उत्पन्न करते हैं। प्राणियों की संख्या करोड़ों में है और भगवान् उन को निर्देश देते हैं। अतएव उन्हें सोने का समय ही नहीं मिल पाता और वे हमारे कार्यकलापों से कभी भी अनभिज्ञ नहीं रहते। वे हर एक घटना के साक्षी हैं। हम प्रतिक्षण जो भी कर रहे हैं उसे वे देखते रहते हैं। भगवान् कर्म से उत्पन्न शरीर से प्रच्छन्न नहीं रहते। हमारे शरीर हमारे

विगत कर्मों के फलस्वरूप निर्मित होते हैं (*कर्मणादैवनेत्रेण*), किन्तु भगवान् के भौतिक शरीर नहीं होता; अतएव उनमें अविद्या नहीं रहती। वे सोते नहीं, अपितु सदैव सतर्क तथा जाग्रत रहते हैं।

भगवान् को त्रियुग कहा गया है क्योंकि वे सतयुग, त्रेता तथा द्वापर युगों में नाना रूपों में प्रकट हुए थे, किन्तु जब वे कलियुग में अवतरित हुए तो उन्होंने अपने आपको कभी भगवान् घोषित नहीं किया—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम्

भगवान् कलियुग में भक्त के रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह यद्यपि वे कृष्ण होते हैं, किन्तु वे भक्त की भाँति 'हरे कृष्ण मंत्र' का कीर्तन करते हैं। फिर भी *श्रीमद्भागवत* (११.५.३२) संस्तुति करती है—

यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्तिहि सुमेधसः

श्री चैतन्य महाप्रभु जिनका रंग कृष्ण की भाँति साँवला नहीं है, अपितु सुनहला (*त्विषाकृष्णम्*) है, भगवान् हैं। उनके साथ नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास जैसे पार्षद रहते हैं। जो लोग पर्याप्त बुद्धिमान् हैं, वे सङ्कीर्तन-यज्ञ द्वारा इन भगवान् की पूजा करते हैं। इस अवतार में भगवान् अपने आपको परमेश्वर कहकर घोषित नहीं करते, अतएव वे त्रियुग कहलाते हैं।

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं
मनोमयं पञ्चदशारमाशु ।
त्रिनाभि विद्युच्चलमष्टनेमि
यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अजस्य—जीव का; चक्रम्—पहिये को (इस जगत में जन्म-मृत्यु के चक्र को); तु—लेकिन; अजया—भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा; ईर्यमाणम्—अत्यन्त वेग के साथ घूमती हुई; मनः-मयम्—जो मुख्यतः मन पर आधारित मानसिक सृष्टि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है; पञ्चदश—पन्द्रह; अरम्—तीलियों वाला; आशु—शीघ्र ही; त्रि-नाभि—तीन नाभियों वाला (भौतिक प्रकृति के तीन गुणों वाला); विद्युत्—बिजली की भाँति; चलम्—गतिमान्; अष्ट-नेमि—आठ नेमियों (परिधियों) से बनी (भगवान् की आठ बहिरंगा शक्तियाँ, भूमिरापोऽनलो वायु इत्यादि); यत्—जो; अक्षम्—धुरी; आहुः—वे कहते हैं; तम्—उनको; ऋतम्—सत्य; प्रपद्ये—हम नमस्कार करें।

भौतिक कार्यों के चक्र में, भौतिक शरीर मानसिक रथ के पहिये जैसा होता है। दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) तथा शरीर के भीतर के पाँच प्राण मिलकर रथ के पहिये के पन्द्रह अरे (तीलियाँ) बनाते हैं। प्रकृति के तीन गुण (सत्त्व, रजस् तथा तमस्)

कार्यकलापों के केन्द्रबिन्दु हैं और प्रकृति के आठ अवयव (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार) इस पहिए की बाहरी परिधि बनाते हैं। बहिरंगा भौतिक शक्ति इस पहिए को विद्युत् शक्ति की भाँति घुमाती है। इस प्रकार यह पहिया बड़ी तेजी से अपनी धुरी या केन्द्रीय आधार अर्थात् भगवान् के चारों ओर घूमता है, जो परमात्मा तथा चरम सत्य हैं। हम उन्हें सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर अलंकारिक ढंग से बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्र का वर्णन हुआ है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.५) में कहा गया है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

सारा संसार इसलिए गतिशील है क्योंकि भगवान् का अंश-रूप जीव भौतिक शक्ति का उपयोग करता है। भौतिक शक्ति के पाश में रहकर जीवात्मा भगवान् के निर्देशन में जन्म तथा मृत्यु के चक्र पर आरूढ़ होकर चक्कर लगा रहा है। इसका केन्द्रबिन्दु परमात्मा है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.६१) में कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

''हे अर्जुन! भगवान् सबके हृदय में स्थित हैं और उन सारे जीवों की गति का निर्देशन कर रहे हैं, जो मानो भौतिक शक्ति से बने किसी यंत्र पर आसीन हैं।'' जीव का भौतिक शरीर बद्ध-जीव के कार्यकलापों का परिणाम है और चूँकि इसका आश्रय देने वाला परमात्मा है अतएव परमात्मा ही वास्तविकता है। इसलिए हमें चाहिए कि इस केन्द्रीय सत्य को सादर नमस्कार करें। मनुष्य को इस जगत के कार्यकलापों से दिग्भ्रमित नहीं होना चाहिए और केन्द्रीय बिन्दु अर्थात् परम सत्य को भूलना नहीं चाहिए। यही यहाँ पर ब्रह्माजी का उपदेश है।

य एकवर्णं तमसः परं त-
दलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ।
आसां चकारोपसुपर्णमेन-

मपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यः—जो भगवान्; एक-वर्णम्—चरम, जो शुद्ध सतोगुणी हैं; तमसः—भौतिक जगत के अंधकार को; परम्—दिव्य; तत्—वह; अलोकम्—जो देखा नहीं जा सकता; अव्यक्तम्—अप्रकट; अनन्त-पारम्—असीम, भौतिक काल तथा दिक् की माप के परे; आसाम् चकार—स्थित; उप-सुपर्णम्—गरुड़ की पीठ पर; एनम्—उनको; उपासते—पूजते हैं; योग-रथेन—योग के यान द्वारा; धीराः—गम्भीर व्यक्ति, जो भौतिक क्षोभ से अविचलित रहते हैं।

भगवान् शुद्ध सत्त्व में स्थित हैं; अतएव वे एकवर्ण—ओङ्कार (प्रणव) हैं। चूँकि भगवान् अंधकार माने जाने वाले दृश्य जगत से परे हैं, अतएव वे भौतिक नेत्रों से नहीं दिखते। फिर भी वे दिक् या काल द्वारा हमसे पृथक् नहीं होते, अपितु वे सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। अपने वाहन गरुड़ पर आसीन उनकी पूजा क्षोभ से मुक्ति पा चुके व्यक्तियों के द्वारा योग शक्ति से की जाती है। हम सभी उनको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : *सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितम्* (*भागवत* ४.३.२३)। इस भौतिक जगत में सतो, रजो तथा तमो—ये तीनों गुण पाये जाते हैं। इन तीनों में से सतोगुण ज्ञान का आधार है, रजोगुण ज्ञान तथा अज्ञान के मिश्रण को लाने वाला है, किन्तु तमोगुण अंधकार से पूर्ण होता है। अतएव भगवान् तमो तथा रजो गुणों से परे होते हैं। वे ऐसे पद पर होते हैं जहाँ सतोगुण या ज्ञान रजो तथा तमोगुण द्वारा विचलित नहीं होता। यह वसुदेव पद कहलाता है। इसी वसुदेव पद पर ही वासुदेव या कृष्ण प्रकट हो सकते हैं। इस प्रकार कृष्ण इस लोक में वसुदेव के पुत्ररूप में प्रकट हुए। चूँकि भगवान् प्रकृति के तीनों गुणों के परे हैं अतएव जिन लोगों में इन तीनों गुणों की प्रधानता होती है, वे उन्हें नहीं दिखते। अतएव मनुष्य को धीर बनना चाहिए या प्रकृति के गुणों द्वारा अविचलित रहना चाहिए। योग का अभ्यास वही कर सकता है, जो इन गुणों के विक्षोभ से मुक्त हो। अतएव योग की परिभाषा इस प्रकार की जाती है—*योग इन्द्रिय संयमः।* जैसा पहले बताया जा चुका है, हम सभी इन्द्रियों द्वारा विचलित होते रहते हैं। साथ ही, हम बहिरंगा शक्ति द्वारा लादे जाने वाले प्रकृति के तीन गुणों द्वारा विचलित किये जाते हैं। बद्ध जीवन में जीव जन्म-मृत्यु के चक्रवात में तेजी से घूमता है, किन्तु जब कोई *विशुद्ध सत्त्व* के दिव्य पद पर स्थित होता है, तो वह गरुड़ की पीठ पर आसीन भगवान् का दर्शन पा सकता है। ब्रह्माजी ऐसे भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं।

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां

यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं
नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यस्य—जिसका (भगवान् का); कश्च—कोई; अतितितर्ति—जीतने में समर्थ; मायाम्—माया को; यया—जिसके द्वारा (माया द्वारा); जनः—सामान्य लोग; मुह्यति—मोहित हो जाता है; वेद—समझो; न—नहीं; अर्थम्—जीवन लक्ष्य; तम्—उस (भगवान्) को; निर्जित—पूरी तरह वशीभूत; आत्मा—जीव; आत्म-गुणम्—तथा उनकी बहिरंगा शक्ति; पर-ईशम्—दिव्य पद पर स्थित भगवान्; नमाम—हम नमस्कार करते हैं; भूतेषु—सारे जीवों मे; समम्—समभाव; चरन्तम्—उन्हें वश में करते या उन पर शासन करते।.

कोई भी व्यक्ति भगवान् की माया का पार नहीं पा सकता जो इतनी प्रबल होती है कि हर व्यक्ति इससे भ्रमित होकर जीवन के लक्ष्य को समझने की बुद्धि खो देता है। किन्तु वही माया उन भगवान् के वश में रहती है, जो सब पर शासन करते हैं और सभी जीवों पर समान दृष्टि रखते हैं। हम उन्हें नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु अपने पराक्रम से निश्चय ही सभी जीवों को वश में रखते हैं यहाँ तक कि सारे जीव जीवन के लक्ष्य को भूल गए हैं। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—लोग भूल गये हैं कि जीवन लक्ष्य भगवान् के धाम को वापस जाना है। भगवान् की बहिरंगा शक्ति अर्थात् माया सभी बद्धजीवों को ऐसा अवसर प्रदान करती प्रतीत होती है, जिससे वे इस भौतिक जगत में सुखी रहें, किन्तु यह रहती है माया ही। दूसरे शब्दों में, यह ऐसा स्वप्न है, जो कभी पूरा नहीं होता। इस प्रकार हर व्यक्ति भगवान् की बहिरंगा शक्ति अर्थात् माया से भ्रमित होता है। यह माया निस्सन्देह, अत्यन्त प्रबल है, किन्तु यह पूर्णतया उस दिव्य व्यक्ति के वश में रहती है, जिसे इस श्लोक में *परेशम्* अर्थात् दिव्य भगवान् कहा गया है। भगवान् इस भौतिक सृष्टि के अंग नहीं हैं, वे सृष्टि से परे हैं। अतएव वे अपनी बहिरंगा शक्ति के द्वारा न केवल बद्धजीवों को वश में रखते हैं अपितु बहिरंगा शक्ति को भी अपने वश में रखते हैं। *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है कि प्रबल माया हर एक को नियंत्रित करती है और उसके नियंत्रण से छूट पाना अत्यन्त कठिन है। यह नियंत्रक शक्ति भगवान् की है और उनके नियंत्रण में कार्य करती है। किन्तु सारे जीव इस भौतिक शक्ति के अधीन हो जाने से भगवान् को भूल गये हैं।

इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा

सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे
कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इमे—ये; वयम्—हम (देवता); यत्—जिसको; प्रियया—अत्यन्त प्रिय लगने वाले; एव—निश्चय ही; तन्वा—भौतिक शरीर; सत्त्वेन—सतोगुण से; सृष्टाः—उत्पन्न; बहिः-अन्तः-आविः—यद्यपि बाहर तथा भीतर से पूर्णतया अवगत; गतिम्—लक्ष्य; न—नहीं; सूक्ष्माम्—अत्यन्त सूक्ष्म; ऋषयः—सन्त पुरुष; च—भी; विद्महे—समझते हैं; कुतः—कैसे; असुर-आद्याः—असुर तथा नास्तिक; इतर—अन्य नगण्य लोग; प्रधानाः—यद्यपि वे अपने समाज के नेता हैं।

चूँकि हमारे शरीर सत्त्वगुण से निर्मित हैं इसलिए हम देवगण भीतर तथा बाहर से सतोगुण में स्थित हैं। सारे सन्त पुरुष भी इसी प्रकार स्थित हैं। अतएव यदि हम भगवान् को न भी समझ सकते हों तो उन नगण्य प्राणियों के विषय में क्या कहा जाये जो रजो तथा तमो गुणों में स्थित हैं? भला वे भगवान् को कैसे समझ सकते हैं? हम उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : नास्तिक तथा असुर भगवान् को नहीं समझ पाते यद्यपि भगवान् हर एक के भीतर स्थित हैं। उनके लिए भगवान् अन्त में काल रूप में प्रकट होते हैं जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्ट हुआ है (*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*)। नास्तिक लोग सोचते हैं कि वे स्वतंत्र हैं, अतः वे भगवान् की सर्वश्रेष्ठता की परवाह नहीं करते; फिर भी भगवान् अपनी सर्वश्रेष्ठता तब जताते हैं जब वे काल के रूप में उन को अभिभूत करते हैं। मृत्यु के समय उनका तथाकथित वैज्ञानिक ज्ञान तथा भगवान् की सर्वश्रेष्ठता को नकारने की दार्शनिक कल्पना विफल हो जाती है। उदाहरणार्थ, हिरण्यकशिपु नास्तिक वर्ग के लोगों का उच्च प्रतिनिधि था। वह सदैव ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती देता था और इस प्रकार वह अपने पुत्र के प्रति भी शत्रुता रखने लगा था। प्रत्येक व्यक्ति हिरण्यकशिपु के नास्तिक सिद्धान्तों से भयभीत था। किन्तु जब भगवान् नृसिंह देव उसे मारने के लिए प्रकट हुए तो उसके नास्तिक सिद्धान्त उसे बचा नहीं पाये। भगवान् नृसिंहदेव ने हिरण्यकशिपु को मार डाला और उसके सारे बल, प्रभाव तथा गर्व को चूर-चूर कर दिया। किन्तु नास्तिक लोग यह कभी नहीं समझ पाते कि उनके द्वारा सृजित प्रत्येक वस्तु किस तरह विनष्ट कर दी जाती है। यद्यपि परमात्मा उनके भीतर स्थित हैं, किन्तु रजो तथा तमो गुणों की प्रधानता के कारण वे भगवान् की सर्वश्रेष्ठता को समझ नहीं पाते। यहाँ तक कि देवता तथा भक्त भी भगवान् के गुणों एवं उनकी स्थिति से पूर्णतः अवगत नहीं हैं यद्यपि वे दिव्य पद पर या सत्त्व पद पर आसीन होते हैं। फिर भला असुर तथा नास्तिक लोग भगवान् को कैसे समझ सकते हैं? ऐसा सम्भव

नहीं है। अतएव इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा इत्यादि देवताओं ने भगवान् को सादर नमस्कार किया।

पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य
चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

पादौ—उनके चरणकमल; मही—पृथ्वी; इयम्—यह; स्व-कृत—उन्हीं के द्वारा उत्पन्न; एव—निस्सन्देह; यस्य—जिसका; चतुः-विधः—चार प्रकार के जीवों का; यत्र—जहाँ पर; हि—निस्सन्देह; भूत-सर्गः—भौतिक सृष्टि; सः—वह; वै—निस्सन्देह; महा-पूरुषः—परम पुरुष; आत्म-तन्त्रः—आत्मनिर्भर, आत्माराम; प्रसीदताम्—वे हम पर कृपालु हों; ब्रह्म—महानतम; महा-विभूतिः—असीम शक्ति से युक्त।

इस पृथ्वी पर चार प्रकार के जीव हैं और ये सारे के सारे उन्हीं के द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। यह भौतिक सृष्टि उनके चरणकमलों पर टिकी है। वे एश्वर्य तथा शक्ति से पूर्ण परम पुरुष हैं। वे हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : *मही* शब्द पाँच भौतिक तत्त्वों—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश—का सूचक है, जो भगवान् के चरणकमलों पर आश्रित हैं। *महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः। महत्-तत्त्व* अर्थात् समग्र भौतिक शक्ति भगवान् के चरणकमलों पर टिकी है क्योंकि यह विराट जगत भगवान् का एक दूसरा ऐश्वर्य ही है। इस विराट जगत में चार प्रकार के जीव हैं—*जरायुज* (भ्रूण से उत्पन्न), *अण्डज* (अण्डों से उत्पन्न), *स्वेदज* (पसीने से उत्पन्न) तथा *उद्भिज* (बीजों से उत्पन्न)। जैसी कि *वेदान्त सूत्र* से पुष्टि होती है (*जन्माद्यस्य यतः*) प्रत्येक वस्तु भगवान् से उत्पन्न होती है। कोई भी स्वतंत्र नहीं है, किन्तु परमात्मा पूर्ण स्वतंत्र हैं। *जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।* स्वराट् शब्द का अर्थ है "स्वतंत्र।" हम स्वतंत्र हैं किन्तु भगवान् पूर्णतया स्वतंत्र हैं। अतएव भगवान् सब से बड़े हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मा भी, जिन्होंने विराट जगत की सृष्टि की है, भगवान् के एक दूसरे ऐश्वर्य मात्र ही हैं। भौतिक सृष्टि भगवान् द्वारा सक्रिय बनाई जाती है अतएव भगवान् भौतिक सृष्टि के अंग नहीं हैं। वे अपने मूल आध्यात्मिक पद पर बने रहते हैं। भगवान् का विश्वरूप, *वैराजमूर्ति,* भगवान् का एक अन्य स्वरूप है।

अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं

सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ।
लोका यतोऽथाखिललोकपालाः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३३॥

शब्दार्थ

अम्भः—इस लोक में या अन्य लोकों में दिखने वाली जलराशि; तु—लेकिन; यत्-रेतः—उनका वीर्य; उदार-वीर्यम्—इतना शक्तिशाली; सिध्यन्ति—उत्पन्न किये जाते हैं; जीवन्ति—जीवित रहते हैं; उत—निस्सन्देह; वर्धमानाः—फूलते-फलते हैं; लोकाः—तीनों लोक; यतः—जिससे; अथ—भी; अखिल-लोक-पालाः—ब्रह्माण्ड भर के सारे देवता; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वह; महा-विभूतिः—असीम शक्ति वाला पुरुष।

सारा विराट जगत जल से निकला है और जल ही के कारण सारे जीव स्थित हैं, जीवित रहते तथा विकसित होते हैं। यह जल भगवान् के वीर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतएव इतनी महान् शक्ति वाले भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : तथाकथित विज्ञानियों के सिद्धान्तों के बावजूद, इस पृथ्वीलोक पर तथा अन्य लोकों में जल की विपुल मात्रा की सृष्टि हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के मिश्रण से नहीं होती है। प्रत्युत जल को कभी-कभी भगवान् का पसीना तथा कभी-कभी वीर्य कहा जाता है। जल से ही सारे जीव प्रकट होते हैं और जल से ही वे जीवित रहते तथा बढ़ते हैं। यदि जल न होता तो सारा जीवन समाप्त हो जाता। जल हर एक के जीवन का स्रोत है। अतएव भगवत्कृपा से हमें सारे विश्व में इतना जल उपलब्ध है।

सोमं मनो यस्य समामनन्ति
दिवौकसां यो बलमन्ध आयुः ।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

सोमम्—चन्द्रमा; मनः—मन; यस्य—जिस (भगवान्) का; समामनन्ति—वे कहते हैं; दिवौकसाम्—उच्चलोक के निवासियों का; यः—जो; बलम्—बल; अन्धः—अन्न; आयुः—उम्र; ईशः—परमेश्वर; नगानाम्—वृक्षों का; प्रजनः—प्रजनन का स्रोत; प्रजानाम्—सारे जीवों का; प्रसीदताम्—वे प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे भगवान्; महा-विभूतिः—सारे ऐश्वर्यों का स्रोत।

सोम (चन्द्रमा) समस्त देवताओं के लिए अन्न, बल तथा दीर्घायु का स्रोत है। वह सारी वनस्पतियों का स्वामी तथा सारे जीवों की उत्पत्ति का स्रोत भी है। जैसा कि विद्वानों ने कहा है, चन्द्रमा भगवान् का मन है। ऐसे समस्त ऐश्वर्यों के स्रोत भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : सोम, जो चन्द्रमा का अधिष्ठाता देव है, अन्न का स्रोत है अतएव वह दैवी प्राणियों, देवताओं की भी शक्ति का स्रोत है। वह सारी वनस्पतियों का प्राण है। दुर्भाग्यवश तथाकथित आधुनिक विज्ञानी चन्द्रमा को पूरी तरह न समझ सकने के कारण, उसे मरुस्थल से पूर्ण बताते हैं। चूँकि चन्द्रमा

हमारी वनस्पतियों का स्रोत है, अत: वह मरुस्थल कैसे हो सकता है? चन्द्रमा का प्रकाश (चाँदनी) सारी वनस्पतियों का प्राण है; अतएव सम्भवत: हम यह नहीं मान सकते कि चन्द्रमा मरुस्थल है।

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा
जात: क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ।
अन्त:समुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्
प्रसीदतां न: स महाविभूति: ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

अग्नि:—अग्नि; मुखम्—मुँह जिससे भगवान् खाते हैं; यस्य—जिसका; तु—लेकिन; जात-वेदा:—सम्पत्ति या जीवन की समस्त आवश्यकताओं को उत्पन्न करने वाला; जात:—उत्पन्न किया; क्रिया-काण्ड—अनुष्ठान; निमित्त—के लिए; जन्मा—इसीलिए निर्मित; अन्त:-समुद्रे—समुद्र की गहराई में; अनुपचन्—सदैव पचाते हुए; स्व-धातून्—सारे तत्त्वों को; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; न:—हम पर; स:—वह; महा-विभूति:—परम शक्तिशाली।

अनुष्ठानों की आहुति ग्रहण करने के लिए उत्पन्न अग्नि भगवान् का मुख है। सागर की गहराइयों के भीतर भी सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिए अग्नि रहती है और उदर में भोजन पचाने के लिए तथा शरीर पालन हेतु विभिन्न स्रावों को उत्पन्न करने के लिए भी अग्नि उपस्थित रहती है। ऐसे परम शक्तिमान भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं
त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ।
द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्यु:
प्रसीदतां न: स महाविभूति: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; चक्षु:—आँख; आसीत्—बना; तरणि:—सूर्यदेव; देव-यानम्—देवताओं के मोक्ष पथ का अधिष्ठाता देव; त्रयी-मय:—कर्मकाण्ड के वैदिक ज्ञान के मार्गदर्शन हेतु; ब्रह्मण:—परम सत्य का; एष:—यह; धिष्ण्यम्—साक्षात्कार का स्थान; द्वारम् च—तथा द्वार; मुक्ते:—मुक्ति के लिए; अमृतम्—नित्य जीवन का मार्ग; च—भी; मृत्यु:—मृत्यु का कारण; प्रसीदताम्—हम पर प्रसन्न हों; न:—हमपर; स:—वे भगवान्; महा-विभूति:—परम शक्तिशाली।

सूर्यदेव मुक्ति के मार्ग को चिन्हित करते हैं, जो *अर्चिरादि वर्त्म* कहलाता है। वे वेदों के ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं; वे परम सत्य के पूजे जाने वाले धाम हैं। वे मोक्ष के द्वार हैं; वे नित्य जीवन के स्रोत हैं; वे मृत्यु के भी कारण हैं। वे भगवान् की आँख हैं। ऐसे परम ऐश्वर्यवान् भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : सूर्यदेव को देवताओं में प्रधान माना जाता है। उन्हें ब्रह्माण्ड के उत्तरी भाग की निगरानी करने वाला देवता भी माना जाता है। वे वेदों को समझने में सहायता करते हैं। *ब्रह्मसंहिता* (५.५२) में

पुष्टि की गई है—

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।

यस्याज्ञया भ्रमति संभृतकालचक्रो

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

''असीम तेज से पूर्ण सूर्य समस्त लोकों का राजा है और उत्तम आत्मा की मूर्ति है। सूर्य भगवान् की आँख के समान है। मैं उन आदि-गोविन्द की पूजा करता हूँ जिनके आदेश से सूर्य कालचक्र पर आरूढ़ होकर अपनी यात्रा करता है।'' सूर्य वस्तुत: भगवान् की आँख है। वैदिक मंत्रों में कहा गया है कि जब तक भगवान् नहीं देखते, कोई भी प्राणी देख नहीं सकता। यदि सूर्यप्रकाश न रहे, तो किसी भी लोक का कोई भी जीव न देख सके। अतएव सूर्य को परमेश्वर की आँख माना जाता है। इसकी पुष्टि यहाँ पर *यच्चक्षुरासीत्* शब्दों द्वारा और *ब्रह्मसंहिता* में *यच्चक्षुरेष सविता* शब्दों द्वारा हुई है। सविता शब्द का अर्थ है सूर्यदेव।

प्राणादभूद्यस्य चराचराणां
प्राण: सहो बलमोजश्च वायु: ।
अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं
प्रसीदतां न: स महाविभूति: ॥ ३७॥

शब्दार्थ

प्राणात्—प्राण से; अभूत्—उत्पन्न हुआ; यस्य—जिसका; चर-अचराणाम्—समस्त चर तथा अचर जीवों का; प्राण:—प्राण; सह:—जीवन का मूल सिद्धान्त; बलम्—बल; ओज:—प्राण; च—तथा; वायु:—वायु; अन्वास्म—अनुसरण करते हैं; सम्राजम्—सम्राट्; इव—सदृश; अनुगा:—अनुयायी; वयम्—हम सभी; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; न:—हम पर; स:—वह; महा-विभूति:—परम शक्तिशाली।

सारे चर तथा अचर प्राणी अपनी जीवनी शक्ति (प्राण), अपनी शारीरिक शक्ति तथा अपना जीवन तक वायु से प्राप्त करते हैं। हम सभी अपने प्राण के लिए वायु का उसी तरह अनुसरण करते हैं जिस प्रकार नौकर राजा का अनुसरण करता है। वायु की जीवनी शक्ति भगवान् की मूल जीवनी शक्ति से उत्पन्न होती है। ऐसे भगवान् हम पर प्रसन्न हों।

श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि

प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।
प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

श्रोत्रात्—कानों से; दिशः—विभिन्न दिशाएँ; यस्य—जिसके; हृदः—हृदय से; च—भी; खानि—शरीर के छेद; प्रजज्ञिरे—उत्पन्न किया; खम्—आकाश; पुरुषस्य—परम पुरुष की; नाभ्याः—नाभि से; प्राण—जीवनी शक्ति का; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आत्मा—मन; असु—प्राण; शरीर—तथा शरीर; केतः—आश्रय; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम शक्तिमान।

परम शक्तिशाली भगवान् हम पर प्रसन्न हों। विभिन्न दिशाएँ उनके कानों से उत्पन्न होती है, शरीर के छिद्र उनके हृदय से निकलते हैं एवं प्राण, इन्द्रियाँ, मन, शरीर के भीतर की वायु तथा शरीर आश्रय रूपी शून्य (आकाश) उनकी नाभि से निकलते हैं।

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादा-
न्मन्योर्गिरीशो धिषणाद् विरिञ्चः ।
खेभ्यस्तुछन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९ ॥

बलात्—उनके बल से; महा-इन्द्रः—राजा इन्द्र बन सके; त्रि-दशाः—तथा देवता; प्रसादात्—प्रसन्न होने से; मन्योः—क्रोध से; गिरि-ईशः—शिवजी; धिषणात्—गम्भीर बुद्धि से; विरिञ्चः—ब्रह्माजी; खेभ्यः—शारीरिक छिद्रों से; तु—तथा; छन्दांसि—वैदिक मंत्र; ऋषयः—बड़े-बड़े मुनि; मेढ्रतः—जननेन्द्रियों से; कः—प्रजापति-गण; प्रसिदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम शक्तिशाली भगवान्।

स्वर्ग का राजा महेन्द्र भगवान् के बल से उत्पन्न हुआ था, देवतागण भगवान् की कृपा से उत्पन्न हुए थे, शिवजी भगवान् के क्रोध से उत्पन्न हुए थे और ब्रह्माजी उनकी गम्भीर बुद्धि से उत्पन्न हुए थे। सारे वैदिक मंत्र भगवान् के शरीर के छिद्रों से उत्पन्न हुए थे तथा ऋषि और प्रजापतिगण उनकी जननेन्द्रियों से उत्पन्न हुए थे। ऐसे परम शक्तिशाली भगवान् हम पर प्रसन्न हों!

श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययासन्
धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ।
द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्रीः—धन की देवी; वक्षसः—उनके वक्षस्थल से; पितरः—पितृलोक के निवासी; छायया—उनकी छाया से; आसन्—बन सके; धर्मः—धर्म का सिद्धान्त; स्तनात्—उनके स्तन से; इतरः—अधर्म (धर्म का विपरीत); पृष्ठतः—पीठ से; अभूत्—सम्भव हो सका; द्यौः—स्वर्ग लोक; यस्य—जिसका; शीर्ष्णः—चोटी से; अप्सरसः—अप्सरोलोक के निवासी; विहारात्—उनके इन्द्रिय भोग से; प्रसीदताम्—कृपया प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे (भगवान्); महा-विभूतिः—समस्त पराक्रम में महानतम।

लक्ष्मी उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुई, पितृलोक के वासी उनकी छाया से, धर्म उनके स्तन से

तथा अधर्म उनकी पीठ से उत्पन्न हुआ। स्वर्ग लोक उनके सिर की चोटी से तथा अप्सराएँ उनके इन्द्रिय भोग से उत्पन्न हुईं। ऐसे परम शक्तिमान भगवान् हम पर प्रसन्न हों!

विप्रो मुखाद्ब्रह्म च यस्य गुह्यं
राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विप्रः—ब्राह्मण-गण; मुखात्—भगवान् के मुख से; ब्रह्म—वैदिक साहित्य; च—भी; यस्य—जिसका; गुह्यम्—अपने गुप्त ज्ञान से; राजन्यः—क्षत्रियगण; आसीत्—सम्भव हो सका; भुजयोः—उनकी दोनों भुजाओं से; बलम् च—तथा शारीरिक शक्ति; ऊर्वोः—जाँघों से; विट्—वैश्यगण; ओजः—तथा उनका सक्षम उर्वर ज्ञान; अङ्घ्रिः—उनके चरणों से; अवेद—वैदिक ज्ञान की सीमा से परे रहने वाले; शूद्रौ—श्रमिक वर्ग; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम शक्तिमान भगवान्।

ब्राह्मण तथा वैदिक ज्ञान भगवान् के मुख से निकले, क्षत्रिय तथा शारीरिक शक्ति उनकी भुजाओं से, वैश्य तथा उत्पादकता एवं सम्पत्ति सम्बन्धी उनका दक्ष ज्ञान उनकी जाँघों से तथा वैदिक ज्ञान से विलग रहने वाले शूद्र उनके चरणों से निकले। ऐसे भगवान्, जो पराक्रम से पूर्ण हैं, हम पर प्रसन्न हों।

लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युति-
र्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ।
भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

लोभः—लालच; अधरात्—निचले होठ से; प्रीतिः—प्यार; उपरि—ऊपरी होठ से; अभूत्—सम्भव हो सका; द्युतिः—शारीरिक कान्ति; नस्तः—नाक से; पशव्यः—पशुओं के उपयुक्त; स्पर्शेन—स्पर्श से; कामः—कामेच्छाएँ; भ्रुवोः—भौंहों से; यमः—यमराज; पक्ष्म-भवः—पलकों से; तु—लेकिन; कालः—नित्यकाल, जो मृत्यु लाता है; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वे; महा-विभूतिः—परम पराक्रम वाले भगवान्।

लोभ उनके निचले होठ से, प्यार उनके ऊपरी होठ से, शारीरिक कान्ति उनकी नाक से, पाशविक वासनाएँ उनकी स्पर्शेन्द्रियों से, यमराज उनकी भौहों से तथा नित्यकाल उनकी पलकों से उत्पन्न होते हैं। वे भगवान् हम सबों पर प्रसन्न हों।

द्रव्यं वयः कर्म गुणान्विशेषं

यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ।
यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

द्रव्यम्—भौतिक जगत के पाँच तत्त्व; वयः—काल; कर्म—सकाम कर्म; गुणान्—प्रकृति के तीन गुणों को; विशेषम्—तेईस तत्त्वों के संयोग से उत्पन्न किस्में; यत्—जो; योग-माया—भगवान् की सृजनात्मक शक्ति से; विहितान्—किया गया; वदन्ति—विद्वान लोग कहते हैं; यत् दुर्विभाव्यम्—जिसे समझ पाना वास्तव में कठिन है; प्रबुध-अपबाधम्—जो लोग पूर्णतया अवगत हैं उन विद्वानों के द्वारा तिरस्कृत; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; नः—हम पर; सः—वह; महा-विभूतिः—हर वस्तु के नियन्ता।

सभी विद्वान लोग कहते हैं कि पाँचों तत्त्व, नित्यकाल, सकाम कर्म, प्रकृति के तीनों गुण तथा इन गुणों से उत्पन्न विभिन्न किस्में—ये सब योगमाया की सृष्टियाँ हैं। अतएव इस भौतिक जगत को समझ पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो लोग अत्यन्त विद्वान हैं उन्होंने इसका तिरस्कार कर दिया है। जो सभी वस्तुओं के नियन्ता हैं ऐसे भगवान् हम सब पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : इस श्लोक का *दुर्विभाव्यम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कोई भी यह नहीं समझ सकता कि भगवान् की भौतिक शक्तियों के माध्यम से भगवान् की व्यवस्था द्वारा प्रत्येक वस्तु किस तरह से इस जगत में घटित हो रही है। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१०) में कहा गया है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—वस्तुतः प्रत्येक वस्तु भगवान् के निर्देशन में घटित हो रही है। बस हम इतना ही जान सकते हैं, किन्तु यह सब कैसे हो रहा है इसे समझ पाना दुष्कर है। हम तो इतना भी नहीं समझ पाते कि हमारे शरीर के भीतर किस तरह व्यवस्थित रूप से सब कुछ हो रहा है। यह शरीर एक छोटा सा ब्रह्माण्ड है किन्तु हम यह भी समझ नहीं सकते कि इस छोटे से ब्रह्माण्ड में कैसे सब कुछ हो रहा है, तो फिर इससे कहीं अधिक बड़े ब्रह्माण्ड के कार्यकलापों के विषय में हम कैसे जान सकते हैं? वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड को समझ पाना अत्यन्त कठिन है; फिर भी विद्वान संतों ने उपदेश दिया है और कृष्ण ने भी यही उपदेश दिया है कि यह भौतिक जगत—*दुःखालयम् अशाश्वतम्*—दुख तथा नश्वरता का स्थान है। मनुष्य को चाहिए कि इसे त्याग दे और भगवद्धाम को वापस जाये। भौतिकतावादी लोग तर्क कर सकते हैं कि, "यदि यह भौतिक जगत तथा इसके कार्यकलापों को समझना असम्भव है, तो हम इसका तिरस्कार कैसे कर सकते हैं?" इसका उत्तर *प्रबुधापबाधम्* शब्द से मिल जाता है। हमें इस भौतिक जगत का परित्याग करना चाहिए क्योंकि इसका त्याग वेदविदों द्वारा होता है। यद्यपि हम यह नहीं समझ पाते कि यह भौतिक जगत क्या है, किन्तु हमें विद्वानों के उपदेशानुसार, विशेष रूप से कृष्ण

के उपदेश के अनुसार, इसे त्यागने के लिए तैयार रहना चाहिए। कृष्ण कहते हैं—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु:खालयमशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मान: संसिद्धिं परमां गता:।

"मुझे प्राप्त करके भक्ति में स्थित योगीजन कभी इस दुख से पूर्ण नश्वर जगत में नहीं लौटते क्योंकि वे परम सिद्धि प्राप्त कर चुके होते हैं।" (*भगवद्गीता* ८.१५) मनुष्य को भगवद्धाम लौटना होता है क्योंकि जीवन की यह परम सिद्धि है। भगवद्धाम जाने का अर्थ है इस भौतिक जगत का तिरस्कार। यद्यपि हम इस भौतिक जगत के कार्यों को समझ नहीं सकते और यह हमारे लिए चाहे अच्छा हो या बुरा, हमें महाजन के उपदेश के अनुसार इसका तिरस्कार कर देना चाहिए और भगवद्धाम वापस जाना चाहिए।

नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये
स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि-
र्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४॥

शब्दार्थ

नम:—हमारा नमस्कार; अस्तु—हो; तस्मै—उसको; उपशान्त-शक्तये—जो अन्य कुछ उपलब्ध करने का प्रयास नहीं करता, जो अशान्त नहीं रहता; स्वाराज्य—पूर्णतया स्वतंत्र; लाभ—सारे लाभों का; प्रतिपूरित—पूरी तरह प्राप्त; आत्मने—भगवान् में; गुणेषु—भौतिक जगत का, जो तीन गुणों के कारण गतिशील है; माया-रचितेषु—माया द्वारा उत्पन्न वस्तुओं का; वृत्तिभि:—इन्द्रियों के ऐसे कार्यों से; न सज्जमानाय—जो आसक्त नहीं होता है या भौतिक सुख-दुख से परे है; नभस्वत्—वायु; ऊतये—भगवान् को जिसने अपने लीला-रूप में इस भौतिक जगत की सृष्टि की।

हम उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं, जो पूर्णतया शान्त, प्रयास से मुक्त तथा अपनी उपलब्धियों से पूर्णतया सन्तुष्ट हैं। वे अपनी इन्द्रियों द्वारा भौतिक जगत के कार्यों में लिप्त नहीं होते। निस्सन्देह, इस भौतिक जगत में अपनी लीलाएँ सम्पन्न करते समय वे अनासक्त वायु की तरह रहते हैं।

तात्पर्य : हम इतना तो जान सकते हैं कि प्रकृति के सारे कार्यकलापों के पीछे भगवान् हैं जिनके संकेत से प्रत्येक घटना घटती है, भले ही हम उन्हें देख न पाएँ। हमें चाहिए कि उन्हें न देख सकने पर भी उन्हें सादर नमस्कार करें। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि वे पूर्ण हैं। उनकी शक्तियों के द्वारा (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*) सब कुछ व्यवस्थापूर्वक सम्पन्न होता रहता है अतएव उन्हें कुछ भी नहीं

करना होता है (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*) । जैसाकि यहाँ पर *उपशान्त-शक्तये* शब्द से सूचित होता है, उनकी विभिन्न शक्तियाँ कार्य करती हैं और यद्यपि वे इन शक्तियों को क्रिया-शील करते हैं, किन्तु स्वयं उन्हें कुछ नहीं करना पड़ता। वे हर वस्तु से अनासक्त हैं क्योंकि वे भगवान् हैं। अतएव हम सबको चाहिए कि उन्हें सादर नमस्कार करें।

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (भगवान्); त्वम्—तुम मेरे भगवान् हो; नः—हमारे लिए; दर्शय—दिखाई पड़ो; आत्मानम्—अपने मूल रूप में; अस्मत्-करण-गोचरम्—हमारी प्रत्यक्ष इन्द्रियों द्वारा विशेष रूप से आँखों से देखने योग्य; प्रपन्नानाम्—हम सभी शरणागतों का; दिदृक्षूणाम्—फिर भी आपको देखने को इच्छुक; सस्मितम्—मुस्काते; ते—तुम्हारा; मुख-अम्बुजम्—कमल जैसा मुख।

हे भगवान्! हम आपके शरणागत हैं फिर भी हम आपका दर्शन करना चाहते हैं। कृपया अपने आदि रूप को तथा अपने मुस्काते मुख को हमारे नेत्रों को दिखलाइये और अन्य इन्द्रियों द्वारा अनुभव करने दीजिये।

तात्पर्य : भक्तगण भगवान् को उनके आदि रूप में उनके कमल सदृश मुस्काते मुख सहित देखना चाहते हैं। वे निराकार रूप की अनुभूति में रुचि नहीं रखते। भगवान् के साकार तथा निराकार दोनों ही रूप होते हैं। निर्विशेषवादियों को भगवान् के साकार रूप का कोई बोध नहीं होता, किन्तु ब्रह्माजी तथा उनकी शिष्य परम्परा वाले सदस्य भगवान् को उनके साकार रूप में देखना चाहते हैं। साकार रूप के बिना मुस्काते मुख की बात ही नहीं उठती, जिसका स्पष्ट संकेत यहाँ *सस्मितम् ते मुखाम्बुजम्* शब्दों से मिलता है। जो लोग ब्रह्मा के वैष्णव सम्प्रदाय के हैं, वे सदैव भगवान् का दर्शन करना चाहते हैं। वे भगवान् के साकार रूप का साक्षात्कार करना चाहते हैं, निराकार रूप का नहीं। जैसाकि यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है—*अस्मत् करण-गोचरम्*—भगवान् के साकार रूप की अनुभूति हम अपनी इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षत: कर सकते हैं।

तैस्तैः स्वेच्छाभूतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ।
कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तैः—ऐसे प्राकट्यों द्वारा; तैः—ऐसे अवतारों द्वारा; स्व-इच्छा-भूतैः—आपकी निजी इच्छा से सब कुछ प्रकट; रूपैः—वास्तविक रूपों द्वारा; काले काले—विभिन्न युगों में; स्वयम्—स्वयं; विभो—हे ब्रह्म; कर्म—कर्म; दुर्विषहम्—असामान्य (अन्य किसी से न किया जा सकने वाला); यत्—जो; नः—हम पर; भगवान्—भगवान्; तत्—वह; करोति—सम्पन्न करता है; हि—निस्सन्देह।

हे भगवान्! आप विभिन्न युगों में अपनी इच्छा से विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं और ऐसे असामान्य कार्य आश्चर्यजनक ढंग से करते हैं, जिन्हें हम सब के लिए कर पाना दुष्कर है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.७) में भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"जब-जब और जहाँ जहाँ धर्म की हानि होती है और अधर्म की प्रधानता होती है, उस समय, हे भरतवंशी! मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।" अतएव यह एक कल्पना नहीं, अपितु तथ्य है कि भगवान् अपनी इच्छा से भिन्न-भिन्न अवतारों में—यथा मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, बलराम, बुद्ध तथा अन्य अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। भक्तगण भगवान् के नाना रूपों में से किसी एक का दर्शन पाने के लिए लालायित रहते हैं। कहा जाता है कि जिस प्रकार समुद्र की लहरों को गिन पाना सम्भव नहीं, उसी तरह भगवान् के रूपों को भी नहीं गिना जा सकता। किन्तु इसका मतलब यह नहीं होता कि चाहे जो कोई अपने को भगवान् का स्वरूप होने का दावा कर दे और उसे अवतार मान लिया जाये। भगवान् के अवतार को स्वीकार किये जाने के लिए शास्त्रों में दिए विवरणों के अनुरूप होना चाहिए। ब्रह्माजी भगवान् के अवतार या समस्त अवतारों के मूल स्रोत का दर्शन पाने के इच्छुक हैं, किसी कपटी के दर्शन के लिए नहीं। अवतार के कार्यकलाप भगवान् की पहचान के प्रमाण हैं। शास्त्रों में वर्णित सारे अवतार अद्भुत कर्म करते हैं (*केशव धृत-मीन शरीर जय जगदीश हरे*)। यह तो भगवान् की निजी इच्छा पर है कि वे प्रकट होते हैं और अन्तर्धान होते हैं। केवल भाग्यशाली भक्त ही उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं।

क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७॥

शब्दार्थ

क्लेश—कठिनाई; भूरि—अत्यधिक; अल्प—बहुत कम; साराणि—अच्छा फल; कर्माणि—कार्यकलाप; विफलानि—निराशा; वा—अथवा; देहिनाम्—मनुष्यों का; विषय-अर्तानाम्—भौतिक जगत का भोग करने के इच्छुक; न—नहीं; तथा—उसी तरह; एव—निस्सन्देह; अर्पितम्—अर्पित; त्वयि—आपको।

कर्मीजन अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए सदैव धनसंग्रह करने के लिए लालायित रहते हैं, किन्तु इसके लिए उन्हें अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। इतने कठोर श्रम के बावजूद भी उन्हें सन्तोषप्रद फल नहीं मिल पाता। निस्सन्देह ही कभी-कभी तो उनके कर्मफल से निराशा ही उत्पन्न होती है। किन्तु जिन भक्तों ने भगवान् की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर रखा है वे कठोर श्रम किये बिना ही पर्याप्त फल प्राप्त कर सकते हैं। ये फल भक्तों की आशा से बढ़कर होते हैं।

तात्पर्य : हम यह व्यावहारिक रूप से देख सकते हैं कि जिन भक्तों ने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपना जीवन कृष्ण की सेवा में अर्पित कर दिया है वे किस तरह बिना कठिन श्रम किये भगवान् की सेवा का प्रचुर अवसर प्राप्त कर रहे हैं। वास्तव में कृष्णभावनामृत आन्दोलन केवल चालीस रुपये से चालू हुआ था किन्तु इस समय उसके पास चालीस करोड़ से भी अधिक की सम्पत्ति है, जो आठ-दस वर्षों के भीतर ही प्राप्त की गई है। कोई भी कर्मी इतनी तेजी से अपने व्यापार में उन्नति करने की आशा नहीं रख सकता; साथ ही कर्मी जो कुछ प्राप्त करता है, वह नाशवान् है और कभी-कभी निराशाजनक भी। किन्तु कृष्णभावनामृत में सब कुछ प्रेरणाप्रद एवं प्रगति लाने वाला है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन कर्मियों के बीच अधिक लोकप्रिय नहीं है क्योंकि यह आन्दोलन अवैध मैथुन, मांसाहार, जुआ खेलने तथा मादकद्रव्य सेवन से दूर रहने की संस्तुति करता है। ये ऐसे प्रतिबन्ध हैं, जिन्हें कर्मी बहुत नापसन्द करते हैं। फिर भी इतने सारे शत्रुओं के होते हुए भी यह आन्दोलन बिना किसी अवरोध के प्रगति करता जा रहा है। यदि भक्तगण कृष्ण के चरणकमलों पर अपने जीवन को समर्पित करके इस आन्दोलन का प्रसार करते रहें तो इसे कोई भी रोक नहीं सकेगा। वह बिना किसी सीमा के आगे बढ़ सकेगा। हरे कृण का जप करो।

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैव स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अवमः—अत्यल्प, नगण्य; कर्म—कर्म; कल्पः—ढंग से सम्पन्न किया गया; अपि—भी; विफलाय—व्यर्थ जाते हैं; ईश्वर-अर्पितः—भगवान् को समर्पित होने के कारण; कल्पते—ऐसा मान लिया जाता है; पुरुषस्य—सारे पुरुषों का; एव—निस्सन्देह; सः—भगवान्; हि—निश्चय ही; आत्मा—परमात्मा, परम पिता; दयितः—अत्यन्त प्रिय; हितः—लाभप्रद।

भगवान् को समर्पित कार्य, भले ही छोटे पैमाने पर क्यों न किये जाँए, कभी भी व्यर्थ नहीं जाते। अतएव स्वाभाविक है कि परम पिता होने के कारण भगवान् अत्यन्त प्रिय हैं और वे जीवों के कल्याण के लिए सदैव कर्म करने के लिए तैयार रहते हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (२.४०) में भगवान् कहते हैं—*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—यह धर्म या भक्ति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि यदि यह अत्यल्प, लगभग नगण्य मात्रा में भी की जाये तो भी श्रेष्ठ परिणाम मिल सकता है। विश्व-इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जिनमें भगवान् की थोड़ी-सी सेवा करने से भी जीव महानतम संकट से बचा है। उदाहरणार्थ, भगवान् ने अजामिल को नरक जाने के महानतम संकट से बचा लिया। वह इसलिए बचाया जा सका क्योंकि अपने जीवन के अन्त में उसने नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया था। अजामिल ने नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण जानबूझ कर नहीं किया था। वास्तव में वह अपने सबसे छोटे पुत्र को बुला रहा था जिसका नाम नारायण था। फिर भी भगवान् नारायण ने इस उच्चारण (जप) को गम्भीरता से लिया और इस तरह अजामिल को *अन्ते नारायणस्मृतिः*—अन्तकाल में नारायण का स्मरण करने का फल मिला। यदि कोई किसी भी तरह नारायण, कृष्ण या राम के पवित्र नाम का स्मरण जीवन के अन्त समय करता है, तो वह तुरन्त ही भगवद्धाम को जाने का दिव्य फल प्राप्त करता है।

वास्तव में भगवान् हमारे प्रेम के एकमात्र लक्ष्य हैं। जब तक हम इस जगत में रहते हैं हमें अनेक इच्छाओं की पूर्ति करनी होती है, किन्तु ज्योंही हम भगवान् के सम्पर्क में आते हैं त्योंही हम पूर्ण तथा पूरी तरह तुष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार छोटा बालक अपनी माता की गोद में पहुँचते ही संतुष्ट हो जाता है। ध्रुव महाराज तपस्या द्वारा कुछ भौतिक लाभ प्राप्त करने के लिए जंगल गये थे, किन्तु जब उन्होंने साक्षात् भगवान् के दर्शन किये तो उन्होंने कहा ''मैं कोई भौतिक वरदान नहीं चाहता। मैं पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ।'' यदि कोई भगवान् की सेवा करके कोई लाभ चाहता भी है, तो यह लाभ अत्यन्त आसानी से बिना कठोर श्रम के ही प्राप्त किया जा सकता है। अतएव शास्त्र की संस्तुति है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम्॥

''कोई मनुष्य हर वस्तु को चाहे या कुछ भी न चाहे या भगवान् के अस्तित्व में तल्लीन होने की

इच्छा करे, किन्तु वह तभी बुद्धिमान् है यदि वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति सम्पन्न करके भगवान् कृष्ण की पूजा करता है।'' (*भागवत* २.३.१०)। यदि भौतिक इच्छाएँ रहें भी तो मनुष्य निस्सन्देह, भगवान् की सेवा करके उन्हें प्राप्त कर सकता है।

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; हि—निस्सन्देह; स्कन्ध—तने; शाखानाम्—तथा डालों का; तरोः—वृक्ष की; मूल—जड़; अवसेचनम्—सिंचाई; एवम्—इस प्रकार; आराधनम्—पूजा; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; सर्वेषाम्—सब का; आत्मनः—परमात्मा का; च—भी; हि—निस्सन्देह।

जब वृक्ष की जड़ में पानी डाला जाता है, तो वृक्ष का तना तथा शाखाएँ स्वतः तुष्ट हो जाती हैं। इसी प्रकार जब कोई भगवान् विष्णु का भक्त बन जाता है, तो इससे हर एक की सेवा हो जाती है क्योंकि भगवान् हर एक के परमात्मा हैं।

तात्पर्य : जैसाकि *पद्मपुराण* में कहा गया है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।

तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

''सभी प्रकार की पूजाओं में से भगवान् विष्णु की पूजा सर्वश्रेष्ठ है और विष्णु की पूजा से भी श्रेष्ठ है उनके भक्त वैष्णव की पूजा।'' जो लोग भौतिक इच्छाओं के प्रति आसक्त हैं, वे अनेक देवताओं की पूजा करते हैं (*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*)। चूँकि लोग अनेकानेक भौतिक इच्छाओं के कारण चिन्तित रहते हैं, वे शिव, ब्रह्मा, काली, दुर्गा, गणेश तथा सूर्य की पूजा विभिन्न फलों की प्राप्ति के लिए करते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु की पूजा करके इन सारे फलों को एक साथ प्राप्त किया जा सकता है। जैसाकि *भागवत* (४.३१.१४) में अन्यत्र कहा गया है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।

प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

''जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को सींचकर वृक्ष के तने तथा सभी डालियों, फूलों तथा फलों को पोषित किया जाता है और जिस प्रकार उदर में भोजन की पूर्ति करके शरीर के सारे अंगों की तुष्टि की जाती है उसी प्रकार विष्णु की पूजा करके हरएक को तुष्ट किया जा सकता है।'' कृष्णभावनामृत कोई

साम्प्रदायिक धार्मिक आन्दोलन नहीं है प्रत्युत यह विश्व के सर्वकल्याणकारी कार्यकलापों के निमित्त है। इस आन्दोलन में जाति-पाति, धर्म या राष्ट्रीयता के भेदभाव से रहित होकर कोई भी व्यक्ति प्रवेश कर सकता है। यदि मनुष्य विष्णुतत्त्व के स्रोत भगवान् कृष्ण की पूजा करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है, तो वह पूर्ण संतुष्ट हो जाता है और सभी तरह से पूर्ण बन जाता है।

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ।
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—हे भगवान्, तुम्हें; अनन्ताय—जो काल की तीनों अवस्थाओं (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) को पार करके सदैव जीवित है उसको; दुर्वितर्क्य-आत्म-कर्मणे—आपको, जो अचिन्त्य कार्यकलाप करने वाले हैं; निर्गुणाय—जो दिव्य तथा भौतिक गुणों की उन्मत्तता से मुक्त हैं; गुण-ईशाय—आपको, जो प्रकृति के तीनों गुणों को वश में रखने वाले हैं; सत्त्व-स्थाय—सतोगुण में स्थित; च—भी; साम्प्रतम्—इस समय।

हे भगवान्! आपको नमस्कार है क्योंकि आप नित्य हैं, भूत, वर्तमान तथा भविष्य की काल सीमा से परे हैं। आप अपने कार्यकलापों में अचिन्त्य हैं, आप भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के स्वामी हैं और समस्त भौतिक गुणों से परे रहने के कारण आप भौतिक कल्मष से मुक्त हैं। आप प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता हैं, किन्तु इस समय आप सतोगुण में स्थित हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् प्रकृति के तीन गुणों द्वारा व्यक्त भौतिक कार्यकलापों को नियंत्रण में रखते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*निर्गुणं गुणभोक्तृ च*—भगवान् सदा ही भौतिक गुणों से परे रहते हैं। फिर भी वे उनके नियामक हैं। भगवान् इन तीनों गुणों को वश में रखने के लिए अपने आपको तीन रूपों में प्रकट करते हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर। वे विष्णु के रूप में सत्त्वगुण का भार स्वयं संभालते हैं और रजोगुण तथा तमोगुण का भार ब्रह्माजी तथा शिवजी को सौंप देते हैं। किन्तु अन्ततः वे ही तीनों गुणों के नियामक हैं। ब्रह्माजी ने प्रशंसा करते हुए कहा कि चूँकि भगवान् विष्णु ने अब सत्त्वगुण का भार ले लिया है अतएव पूरी आशा है कि देवताओं की इच्छाएँ पूरी होंगी। देवताओं को तमोगुणी असुरगण सता रहे थे। किन्तु जैसाकि ब्रह्माजी पहले कह चुके हैं, चूँकि सत्त्वगुण का समय अब आ गया है अतएव देवतागण अपनी इच्छापूर्ति की आशा कर सकते हैं। देवताओं को ज्ञान में उन्नत माना जाता है फिर भी वे भगवान् के ज्ञान (ईशज्ञान) को नहीं समझ पाये। अतएव भगवान् को यहाँ

पर अनन्ताय कहकर सम्बोधित किया गया है। यद्यपि ब्रह्माजी भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानते हैं, फिर भी वे भगवान् के असीम ज्ञान को समझने में असमर्थ रहते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के आठवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''देवताओं द्वारा भगवान् से सुरक्षा-याचना'' नामक पाँचवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।